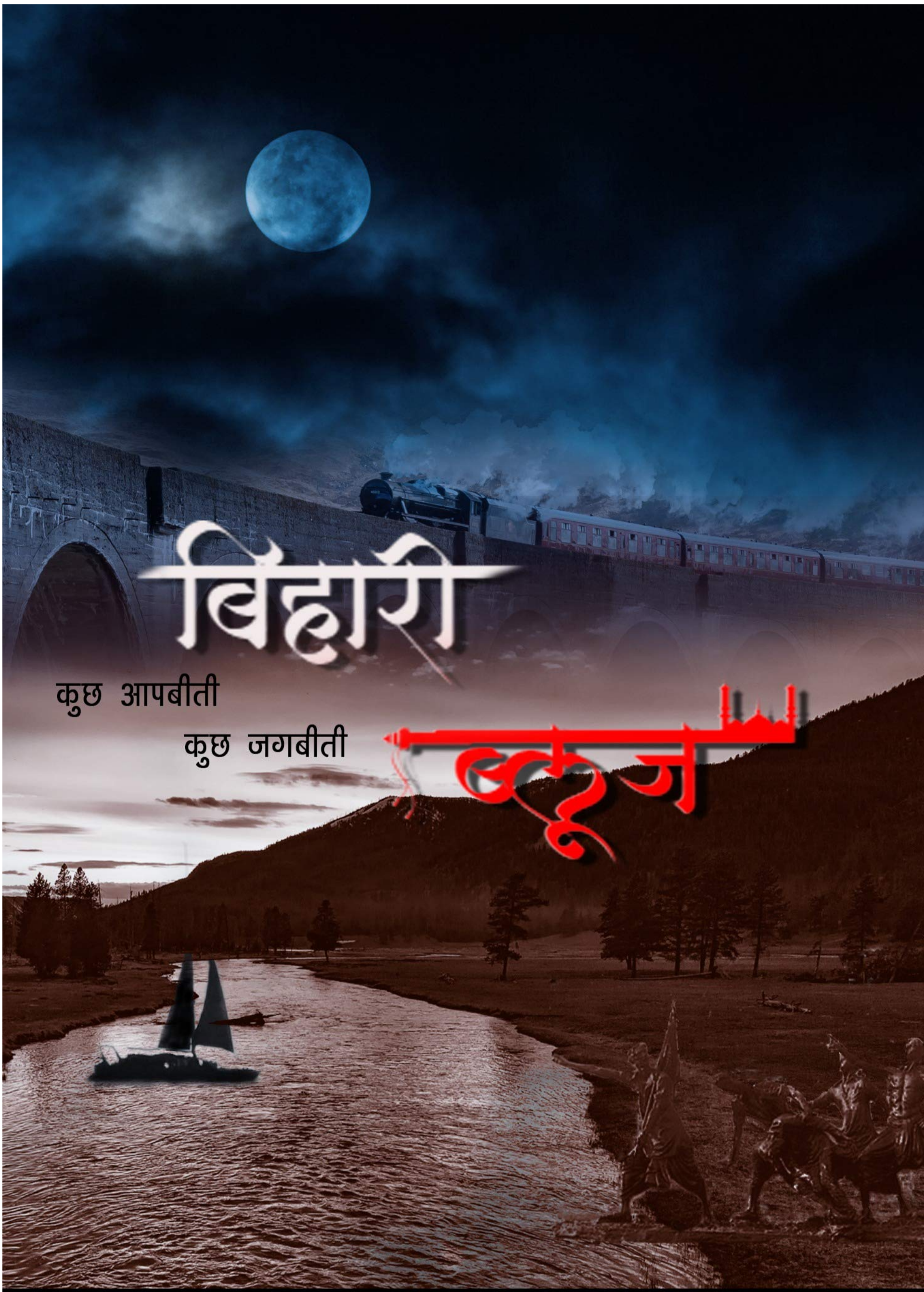

बिहारी ब्लूज

कुछ आपबीती

कुछ जगबीती

अविनाश कुमार

बिहारी ब्लूज

Copyright © 2020 by Avinash Kumar

All rights reserved. No part of this book may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form by any means, electronic, mechanical, magnetic, optical, chemical, manual, photocopying, recording or otherwise, without the prior written consent of its copyright holder indicated above.

ISBN: 978-81-948014-8-1

Price: ₹ 249.00

Publishing Year 2020

Published and Printed by:

Sankalp Publication

Head Office: Ring Road 2 Gaurav Path, Bilaspur, Chhattisgarh – 495001

Phones: +91 9111395888 +91 9111396888

Email: support@sankalppublication.com

Website: www.sankalppublication.com

बिहारी ब्लूज

कुछ आपबीती कुछ जगबीती

अविनाश कुमार

संकल्प

यह एक दस्तावेज़ है मेरे जैसे चंद स्वप्नजीवियों का, जिनकी कारगरदियों का कुछ एक पुलिंदा इस किताब में शामिल है। उस पुलिंदे में टूटते बचपन और छूटते सपने की कहानी है। इसी के बरअक्स कुछ और भी है। कुछ खट्टा, कुछ मीठा, कुछ कसैला। वैसे शरीक तो इसमें बिहार भी है जिसका नक्शा बदलते भारत में हर बार बदला। गहमा-गहमी से लबरेज़ नब्बे के दशक में बिहार का नक्शा इतना धुंधला हो गया कि ऐसा लगने लगा मानो गाढ़े हिंदुस्तान में बिहार है ही नहीं और बिना बिहार वाली तस्वीर के भी देश मुकम्मल है। बस कुछ-कुछ उसी का अमलीजामा है यह किताब। जिस तह में मैंने ज़िन्दगी गुज़ारी उसी के बरअक्स यादों और सपनों के ख़ाके खींचने का यह मेरा प्रयास है। बता दूं कि यह मेरा पहला प्रयास है।

जो गुज़ारी न जा सकी हम से

हम ने वो ज़िंदगी गुज़ारी है

जौन एलिया

इश्तहार :

* "देख रहलो हे मिसिर जी, अखबरवा के पहिलके पनवा पर इंदिरा गांधी के फोटू छप्पल है। "

" काहे ले हो ? "

" बेलछी में सिंघवा के एगारह ठो आदमी के मार न देलकै। ओहे से पूर्व प्रधानमंत्री हथिया पर चढ़ के बेलछी गेल हलथिन। "

बतकही :

* " ई रोवा कानी काहे हो रहा है सत्येंद्र सिंह के यहां जी ? "

" कल बारा में चौंतीस भूमिहार को मार दिया नेक्सलाइट। "

" हां तो ! "

" चचेरा भाई था उसमें एक ठो इनका। "

" अउर सत्येंद्र सिंह ? "

" उ तो गए बेलाउर। "

कवितापाठ :

* " सोन नदी दक्खिन से उत्तर बहती है। "

" गंगा जी भी बनारस में उत्तरायण हो जाती हैं। "

" गंगा जी और सोन का मिलान भोजपुर में होता है। "

" भोजपुर का पानी लाल है। "

" बिहार का पानी लाल होने वाला है। "

बतरस :

* " रे बउवा व्हाइट हाउस कतऽ छौ ? "

" अमेरिका में छि। "

" धुत्त बुड़बक। एकटा व्हाइट हाउस पटनो में छियौ। "

" पटना में ! "

" अउर नै त कि ! ओयठाम ममता कुलकर्णी के नाच होवै छै....मुझको राणा जी माफ करना गलती म्हारे से हो गई....। "

बात-बे-बात :

***** "रामाशीष के लइका का अपहरण हो गया। "

" फिरौती केतना मांगा है ? "

" पकड़ुवा बियाह करवा दिया। लईकी मोकामा की है। "

" रामाशीष के तो कलेजा फट गया होगा न जी। "

" हां त अब क्या कीजियेगा। ई त रोज-रोज के तमाशा है। "

ग़ैबत :

***** " शिल्पी जैन पटना वोमेन्स कॉलेज में न पढ़ती थी ! "

" कौन शिल्पी जैन ? "

" अरे वही जिसका बलात्कार कर के मर्डर कर दिया था। "

" अच्छा...! जिसका ल्हास मिला था विधायक के गैराज में। पर उसका रेप और मर्डर तो उहे न किया जी..मुख्यमं..."

" ...चुप रहिये महाराज। कवनो सुन लिया त लेवे के देवे पड़ जायेगा। "

बतकुच्चन :

***** " ई टी एन सेसन के है हो ? सुनलियो हे कि एकदमे पानी पिला देलकई हे। "

" बहुते टाइट आदमी है। "

" अउर यू एन विस्वास ? "

" ऊ तो अउरो जादे टाइट है मरदे। ऊ तो पनिया के साथे साथ चरवो खिला देलकई हे। "

मुस्तंबत :

***** "हऊ जे आसमान में उड़ रहल बा, का बा हो ? "

" उड़नखटोला। अंग्रेजी में एकरा के हेलीकॉप्टर बोलल जाला।"

"अउर उ जे बुलु सुटर पहिन के ओकरा में बइठल बा ? "

" गरीब-गुरबा के मसीहा। गुदड़ी के लाल। "

भोगा हुआ यथार्थ :

26 जनवरी 1999, दिन मंगलवार।

हे भन्ते ! मेरे जन्म के उपरांत ही पिता ने मेरे कानों में यह मंत्र फूंका था, '*आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः*

नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति।'

अर्थात् मनुष्यों के शरीर में रहने वाला आलस्य ही उनका सबसे बड़ा शत्रु होता है। परिश्रम जैसा दूसरा हमारा कोई अन्य मित्र नहीं होता क्योंकि परिश्रम करने वाला कभी दुखी नहीं होता।

और पांच वर्ष की आयु सीमा को छूते ही वे मुझे हर सुबह चार बजे जगाने लगे। जो मैं हीला-हवाला करता तो झुंझलाते हुए संस्कृत का एक और वाक्य मुझ अबोध पर ठेल देते, 'अलक्ष्मीराविशत्येनं शयानमलसं नरम्।' मतलब यह कि सदैव सोते रहनेवाले आलसी में दरिद्रता निवास करती है। और मैं आँखें खोल कर बैठ जाता। दरिद्रता के भय से नहीं बल्कि इस वाक्य की अनदेखी करने के बाद पड़ने वाले थप्पड़ के डर से।

सुबह के पांच बजे रहे थे। यह चौथी बार था जब मैंने बजते अलार्म को ठोक कर चुप कराया था। ट्रिंग..ट्रिंग की आवाज़ पर आँख अलसभोर में अँखुवाते हुए खुलती पर रजाई के भीतर पसरी गर्माहट फिर से मुझे नींद की आगोश में धकेल देती। मुझे खुद पर ग़ुस्सा भी आ रहा था कि आज जबकि मुझे दृढ़ता दिखानी चाहिए मैं आलस्य में क्यों गड़ा जा रहा हूं। पिताजी घर पर थे नहीं और माँ को मेरी इस कमज़ोरी का अच्छे से पता था। इसीलिए मेरी ताक़ीद से इतर जो मैंने रात को सोने से पहले दी थी कि सुबह

चार बजे मुझे याद से उठा देना। माँ ने बाक़ायदा चार बजे का अलार्म लगाया था और खुद अभी तक दो बार मुझे झिंझोड़ भी चुकी थी। वैसे रात सोने से पहले मैंने अगली सुबह होने वाली अपनी सारी गतिविधियों की अच्छे से समयानुसार गणना की थी। तब मैंने पाया कि सुबह चार बजे जागना थोड़ी जल्दीबाज़ी होगी। और यही सोचकर मैंने घड़ी की अलार्म वाली सुई को आधे घण्टे सरका कर साढ़े चार कर दिया। रजाई तानी ही थी कि एक और गणना दिमाग में घूमी और वापिस कांटे को घसीटते हुए मैंने चार चालीस कर दिया। और तभी अलार्म ट्रिंग..ट्रिंग कर पांचवीं बार बज उठा। कितनी कर्कश आवाज़ है यह। रौशन का अलार्म अच्छा है। मुर्गा जैसा कुकड़ू कू बोलता है। जल्दी नींद खुलती है उससे। आख़री बार खीजते हुए मैंने अलार्म के लाल बटन को दबाया और ऐंठते हुए बैठ गया। कितने काम हैं आज। मैं हिसाब लगाने लगा। पहले झंडा फहराई है। फिर चमरटोली से क्रिकेट मैच है। उदय मामा और मुन्ना मामा आने वाले हैं। साथ में सुशील मामा भी होंगे। सभी दामोदर सिंह से मिलकर आगे की चर्चा करेंगे। पिछले दिनों लाला मामा की गुरपा पहाड़ी के पास नक्सलियों ने हत्या कर दी थी। पहले बम से घायल किया। फिर आठ गोली उनके सीने और पेट में उतार दी थी। उसी का बदला लेना है। ऐसा कुछ मैंने सुना था। अचानक से पीठ चुनचुनाने लगी। कल शाम को बाल कटाने के बाद मैंने स्नान नहीं किया था। मैंने गर्दन से चुभती बालों की कतरन को टटोला और खिड़की की हल्की रौशनी में उसकी रंगत को ध्यान से देखने लगा। यह तो काला है। फिर रंगदार सुरेंद्र यादव ने मेरे बाल काट रहे मोहन नाई को क्यों कहा कि, "का रे नउवा *भूरा बाल* काट रहा है।" पर भूरे बाल तो राशिद चाचा के हैं और बाल कटवाने की उनकी बारी मेरे बाद की थी। रंगदार सुरेंद्र यादव पकडुवा बियाह करवाता है। गुरपुरब मेले का ठेका भी वही लेता है।

बहरहाल, मैं कसमसाते हुए उठा। उठना पड़ा क्योंकि मेरी सबसे बड़ी चिंता चमरटोली से मैच और झंडा फहरायी के बाद

मिलने वाली जलेबी की थी। चार दिन पहले ही उनलोगों ने हमें बुरी तरह से हराया था। अब उन्हें हराने की बारी हमारी थी। इसलिए ज़रूरी था कि मैच से पहले बजरंगबली का आशीर्वाद ले लिया जाय। वैसे चमरटोली से मेरी कटुता सिर्फ मैच तक ही सीमित थी। मैच के बाद हमारे बीच एक नए किस्म का समाजवाद पनपता जो पुराने समाजवादियों के गले से नीचे उतरता ही नहीं था। हम एक ही प्लेट में कचौड़ी तोड़ते और एक ही ठोंगा में भूंजा भी फांकते। मुझे कोई फ़र्क़ नज़र नहीं आता और ना ही चमरटोली में बसे मेरे बाल मित्रों को। हालांकि, मेरी बिरादरी के कुछ को यह नागवार गुज़रता। वो मुंह चिढ़ाते, "हमको तो इसके जात में ही फरक मालूम पड़ता है।" यह वाक्य कई बार सुना था मैंने।
"ई सरवा भूमिहार है कि चमार हो..?"

अब नहाना एक नई मुसीबत थी। एक तो हाड़ कंपाती ठंढ ऊपर से चापाकल का ठंढा पानी। कोई और दिन होता तो सिर्फ हाथ-पैर धो कर मंदिर निकल जाता पर मामला मैच का था। रिस्क लेना भारी पड़ सकता था। कुनमुनाते हुए कुछ लोटा पानी अपनी पीठ पर डाला, कपड़े पहने और मंदिर की तरफ दौड़ लगा दी।

पुरानी चौक स्थित बजरंगबली के मंदिर में भीड़ तो वैसे यदा-कदा ही रहती है पर दिन जो अगर मंगलवार हो तो फिर वहां पैर रखने की भी जगह नहीं बचती है। पूस महीने की कंप-कंपाती ठंढ और पौ फटने की बेला के बीच भक्तों का भगवान के प्रति ऐसा समर्पण, ऐसा निहंगपन विरले ही देखने को मिलता है। समय के साथ भक्तों की बढ़ती तादात भक्तों का उत्साह तो बढ़ाती है पर यही भीड़ भगवान के दर्शन की प्रक्रिया को और जटिल बनाती जाती है। भक्ति धीरे-धीरे पराक्रम और बाहुबल का

परिचायक बन जाती है और यह सब इतना स्वतःस्फूर्त होता है कि पता ही नहीं चलता कि कब भक्ति चरणबद्ध तरीके से भसड़ में बदल गयी है। हनुमान जी के दर्शनाभिलाषियों की उस कतार में मैं भी शामिल था जो हनुमान चालीसा की चौपाइयां बुदबुदाते हुए अपनी प्रार्थना स्वीकृति की आस लिए मंदिर में प्रवेश को आतुर था। मंदिर की चौखट लांघते ही मैंने अपनी प्रार्थना ऊंचे स्वर में भजना शुरू कर दिया, 'हे बजरंगबली, आज के मैच में हम भुटकुन के एक ओवर में तीन छक्का मारें और स्कूल के झण्डा फहराई में सबसे ज़्यादा जलेबी हमको ही मिले...जय श्रीराम'। मैं अनवरत अपने इच्छित वर की मांग जिस लयबद्ध तरीके से कर रहा था इससे अन्य भक्तों की तल्लीनता ही भंग नहीं हुई बल्कि उनकी हंसाई भी छूट गयी। मानव उत्पत्ति के विभिन्न क्रम हेमोहिबलिस और हेमोसेपीएन्स की बौद्धिकता के बीच झूलते मुझ निर्बोध ने साष्टांग हो कर हनुमान जी के पैर पकड़ अपनी प्रार्थना उसी आवेग में दोहराई , मंदिर की सीलिंग से लटक रहे घण्टे को ऊँचक कर बजाने की नाकाम कोशिश की और बजरंग बली का जयघोष करता हुआ दनदनाते अपने स्कूल के लिए निकल पड़ा। स्कूल पहुंचने पर पता चला किसी ने स्कूल की दीवार पर एक पर्चा चिपकाया है जिसमें सभी शिक्षकों को झंडा न फहराने के लिए ताक़ीद किया गया था और अगर किसी से इस आदेश की नाफ़रमानी की तो उसे अंजाम भुगतने की धमकी भी दी गयी थी। पर्चा छापने वाले ने सबसे आखिर में अपना नाम 'लाल सलाम' लिखा था। यह फ़रमान पढ़ने के बाद स्कूल के सभी कर्मचारियों ने झंडातोलन न करने में ही अपनी भलाई समझी।

भारत का ऊँचासवाँ गणतंत्र दिवस देश के इस भू-भाग पर बिना झंडातोलन के ही बीत गया। अब झंडा नहीं फहरा तो जलेबी भी नहीं बंटी।

भुटकुन दूर कोने में चुपचाप उदास खड़ा था। शायद जलेबी नहीं मिलने की टीस उसके मन पर भी थी। तभी किसी ने बताया कि पिछली रात पच्चीस जनवरी को रणबीर सेना ने शंकर बिगहा गांव पर हमला कर बाईस दलितों की हत्या कर दी थी। भुटकुन का ननिहाल शंकर बिगहा था। उसके नाना समेत परिवार के तीन लोगों की हत्या हुई थी। चौदह वर्षीय भुटकुन दलित था और तेरह वर्षीय मैं भूमिहार। मैंने सहानुभूति में अपना हाथ भुटकुन के कांधे पर रखा तो उसने झटके से अपना कांधा मेरे हाथ से अलग कर लिया। यह पहली बार था जब भुटकुन ने ऐसा व्यवहार किया था। और भुटकुन ने ऐसा क्यों किया था यह बात मेरी समझ से बाहर थी। भुटकुन की आँखें लाल थीं। इतनी लाल जैसे आँखों में कोयला जल रहा हो। मेरी आँखें भी लाल थी। क्रिकेट की ख़ुमारी ने मुझे सारी रात सोने नहीं दिया था। आँखों का लाल होना तथा उसकी परिणति अक्सर एक सी नहीं होती है। भुटकुन का मन उद्धविघ्न था। वो अपना थैला उठा कर जाने लगता है। वो जाते-जाते मुझे देखता है। ज़मीन पर पड़ी क्रिकेट बॉल को देखता है और आगे बढ़ जाता है। मैं भुटकुन की पीठ तब तक देखता रहता हूं जब तक कि वो मेरी आँखों से ओझल न हो जाता है। मुझे उम्मीद थी कि भुटकुन अगले चौराहे से लौट आएगा और एक बार फिर से क्रिकेट के मैदान पर हमदोनों में रस्साकशी होगी। पर ना तो भुटकुन रुका और ना ही वापस आया। भुटकुन चला गया हमेशा के लिए।

तो सुधी पाठकों, यह प्राक्कथन महज़ बानगी भर नहीं थी। कारण यह था कि जातीय अतिवाद का रसायन बिहार की फ़िजां में पुरज़ोर तरीके से घुल रहा था। देश के पूर्वी भू-भाग में स्थित गौरवशाली अतीत से लदा बिहार अब राजनीतिक और सामाजिक अकर्मण्यता का शिकार हो रहा था। यह वो दौर था जब देश में मंडल कमीशन लागू हो चुका था। पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की लिट्टे आतंकवादियों ने हत्या कर दी थी। देश मे आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत हो चुकी थी। सचिन तेंदुलकर क्रिकेट के धूमकेतु बन चुके थे। लालकृष्ण आडवाणी की ऐतिहासिक रथयात्रा को समस्तीपुर में रोका जा चुका था और लालू प्रसाद यादव बिहार के मुख्यमंत्री बन चुके थे। अस्सी के उत्तरार्ध में पैदा होने वाला बिहारी इन्हीं ख़बरों के सायों के बीच बड़ा हो रहा था। यह वो काल था जब बिहार बदहाल से बदनाम हो रहा था। नक्सली हिंसा का ना रुकने वाला लोहमर्षक दौर शुरू हो चुका था। अपहरण के मकड़जाल ने पूरे प्रदेश को अपनी गिरफ़्त में ले लिया था और पूरे देश में बिहार की छवि एक अलग ही तरह के सांचे में ढ़ाल कर गढ़ी जा रही थी। पर बिहार की इस प्रतीकात्मकता के बावजूद एक पौध ऐसी भी थी जो इस हिंसा-प्रतिहिंसा की प्रयोगशाला से निकल कर नए भू-भाग में सिंचित होने का सपना देख रही थी। अब चाहे वो श्रमिक वर्ग हो जो रोज़ रात को ट्रेनों में बैठ कर महाराष्ट्र और गुजरात रवाना हो रहे थे या फिर वो जो देश का कर्णधार बनने की चाह में दिल्ली कुच कर रहे थे। भुटकुन बरसों पहले जंगल के वीरानों में खो चुका था। मैं दिल्ली की भीड़ में खोने जा रहा था। भुटकुन को जंगल के कायदों

ने अनेकों नाम दिए मसलन कामरेड, नक्सली, हार्डकोर नक्सली, एरिया कमांडर, सब जोनल कमांडर और ना जाने क्या-क्या। मुझे मेरी भगौलिक और सामाजिक पृष्ठभूमि की वजह से दिल्ली में सिर्फ एक नाम मिलने जा रहा था.....बिहारी ।।

अब बात निर्वाण / निर्माण की..! जो भी समझना है समझिये ।

13 फरबरी 2004, शुक्रवार।

"मालकिन.....मलकिन।"

"कौन है ?"

"हम हैं...गनेसी, नंदू बनिया के इहाँ से सौदा-समान लियाये हैं। अन्दरवा ला के रख दे का..?" 40 किलो की बोरी को माथे पर उठाए गनेसी ने मिमयाते हुए कहा।

"ना...ना....वहीं रुको। बाहर चौकी है न उसी पर रखो दो। हम आते हैं।" माँ ने अंदर से आवाज़ लगाई।

बिना जूता-चप्पल वाले प्राणियों का बरामदे से अंदर प्रवेश वर्जित है। जूता अथवा चप्पल उतार कर चापाकल के ठंडे पानी से रगड़-रगड़ कर पहले एड़ियां मसलें फिर अंदर पधारें। यह हमारे घर का अलिखित नियम था और गनेसी इस कायदे से अच्छे से वाकिफ़ था। इसीलिए ओसारे से घर के भीतर मनुहार करना उसकी दिनचर्या में शामिल था। गनेसी गाँव का टहलुआ है जिसने आख़री बार चमड़े की चप्पल अपनी शादी में पहनी थी। भीड़-भाड़ का फायदा उठा कर किसी ने उसी रात दूल्हे के चप्पल पर हाथ साफ कर दिया था। इसको ले कर थोड़ी बहुत हाय-तौबा भी मची पर गनेसी को चप्पल खोने का कोई दुख नहीं था। इसके

विपरीत गनेसी खुश था क्योंकि आज रात की शादी में उसे एक ऐसी औरत मिलने वाली थी जो पूरी ज़िंदगी उसका ख़्याल रखेगी, घर सम्हालेगी, चूल्हा चौका करेगी और उसके बच्चे पालेगी। शादी के कई सालों तक गनेसी को कोई बच्चा नहीं हुआ। गनेसी का परिवार सारा दिन उसकी बीवी को उलाहना देता रहता। बांझ, कुलटा और ना जाने कैसी-कैसी फोहस गालियां। गनेसी और उसकी बीवी ने ओझा और बाबाओं के खूब चक्कर लगाए पर कोई फायदा न हुआ। फिर एक दिन गाँव के स्वास्थ्य मेले में एक सरकारी डॉक्टर ने इस बात की तस्दीक करी कि गनेसी ने शादी से पूर्व ही नसबंदी करवा ली थी। गनेसी सर झुकाए खड़ा था और उसकी बीवी गनेसनी लगातार रोए जा रही थी। हम उसकी बीवी को गनेसनी कह कर बुलाते थे। सरकारी स्किम के तहत नसबंदी कराने वाले को रेडियो मिल रहा था तो बस उसी रेडियो की जुगत में गनेसी ने नसबंदी करवा ली थी। गनेसनी को क्या पता था कि जिस रेडियो पर वो इतने जतन से फिल्मी गाने सुनती है वो रेडियो उसके वैवाहिक सुख की बलिवेदी से प्राप्त हुआ था। जड़ और अचल रेडियो गनेसनी की संतान सुख के विधि विपर्यय का कारक बन गया था। पर अभी कुछ दिन पहले ही गनेसनी ने बच्चा जना है। यह चमत्कार कैसे हुआ किसी को नहीं पता। टोला-पड़ोस की औरतें इसे पांचू कलवार की कृपा कहती हैं। पांचू ताड़ और खजूर के पेड़ से ताड़ी चुवाता है। लोग कानाफूसी करते कि पांचू ने गनेसी को ताड़ी पिला-पिला कर मतवाला बना दिया है। उधर गनेसी ताड़ी के रस

में बेसुध रहा इधर पांचू ने अपना रस उसकी मेहरारू में निचोड़ दिया।

"ई गनेस नहीं गोबर गनेस है।" कहते हुए लोग हंसते। इससे बेलाग गनेसी सारा दिन अपने बेटे को गोद में लिए घूमता रहता और अपनी शेखी बघारता। गनेसी नसबंदी कार्यक्रम को झूठ का पुलिंदा बताता और अपनी धूर्तता पर हंसता कि कैसे उसने सरकारी डॉक्टर-डॉक्टरनी को बेवकूफ़ बनाया। पढ़े-लिखे गँवार हैं सब। बंध्याकरण के बाद भी बाप बन जाना कोई खेल नहीं है।

रोजमर्रा के घर वाले कामों से निवृत हो कर माँ अब तक ओसारे में आ चुकी थी। उन्होंने चौकी पर रखे समान पर एक सरसरी निगाह डाली। "और बाकी का सामान कहाँ है ? पता है न आज मनु दिल्ली जा रहा है।"

"बाकी सामान मालिक जी पिछवा से ला रहे हैं।" गनेसी ने कहा।

"पर मनु के पापा कहां रह गए ?" गनेसी के पास इस सवाल का कोई जवाब नहीं था तो वो अनुतप्त सा दीवार की ओट ले कर खड़ा हो गया।

"ओह ! समझ गए हम, मिल गए होंगे दुबे जी और चल रहा होगा चाय का दौर गोपीनाथ के दुकान पर।" माँ ने ओसारे से बाहर ताकते हुए कहा। "आज बेटा दिल्ली जा रहा है। ये न होगा कि घर जल्दी आएं, बेटे से चार बातें करें, पर न...यहां फिक्र किसको है। इनको तो बस अपने चकल्लस से मतलब है।" बोरी को अंदर ले जाते वक्त भी माँ की आवाज़ बाहर बरामदे तक गूँज रही थी। गनेसी अभी भी दीवार कि ओट लिए खड़ा था। माँ के अगले आदेश की आस में उसने गमछे से चौकी पर पड़ी धूल को झाड़ा

और गमछा बिछा कर वहीं लेट गया। गनेसी एक नाच गिरोह का सदस्य भी था। सट्टा जहां का भी होता गनेसी को नाच पार्टी के साजिन्दों के साथ वहां जाना पड़ता था। गनेसी गिरोह में कभी लौंडा बनता तो कभी जोकर। बीती रात ड्योढ़ी पर एक सट्टा था। ड्योढ़ी पर भूमिहारों की बहुलता थी। दारू के नशे में भूमिहारों ने गिरोह के सभी लवन्डो को सारी रात नचवाया। रात के तीसरे पहर जब गनेसी ने देखा कि सभी लोग दारू के नशे में लटपटा गए हैं तो मौका देखते ही मंच से कूद कर भाग निकला। वरना क्या पता ये लंठ भूमिहार नशा टूटने तक पूरा दिन भी नचवाते रहते। देह टूट रही थी गनेसी की। चौकी पर लेटते ही टीसते बदन को हल्का सुकून मिला और कब नींद ने आ घेरा गनेसी को पता ही न चला। आधा माघ बीत चुका था। फागुन की अगुवाई में मौसम ने थोड़ी सी करवट बदल ली थी। मौसम पर अभी से ही फागुन की द्विअर्थी रंगत चढ़नी शुरू हो गई थी। ऑरकेस्ट्रा में भी द्विअर्थी गानों की खूब मांग होती थी। गनेसी जब बाई जी का भेष धरता और

'*गोरिया पतरी जइसे लचके लवंगिया के डाढ़*
केलवा के थम्ब अइसन गोरिया के जंघिया
जोबना बा निम्बूआ अनार '

गीत के साथ अपनी टांगों को फैला कर त्रिभंगी अदा में चकफेरिया भरता तो क्या बच्चे, क्या जवान और क्या बुज़ुर्ग ! सब आँख फाड़े बस आह भर देखते रह जाते ! रह-रह कर चवन्नी-अठन्नी उछाली जाती। रुपये दो रुपये के नोट की बरसात भी होती। पांच और दस रुपये की पेशी बमुश्किल ही होती पर ऐसा

करने वाले कद्रदानों की फरमाइश भी पूरी करनी पड़ती गनेसी को। गनेसी जब-जब '*जोबना बा निम्बूआ अनार और फगुआ में बलमू दिहले चोलिया असों न जोबना समाय*' बोल कर पैर के दोनों चौवों पर ज़ोर -ज़ोर से उछलता और अपने सीने को हिलाते हुए अश्लील प्रदर्शन करता तो भीड़ उन्मादी हो जाती। लोग फोश-फब्तियाँ कसते। अश्लील इशारे करते। भीड़ के हर कोने से यही आवाज़ गूंजती, "अगे पतुरिया..अगे रंडिया तनि एक बार अउर अपन दुनु चुचिया हिलाव ! हो..हो..हो...! "अश्लील प्रदर्शन की सामूहिक मांग पर उभरी जन चेतना का स्वर भी अक्सर इसी रूप में उभरता है। गनेसी किसी को निराश नहीं करता है और फिर से अपने दोनों जोबनों में कम्पन पैदा कर देता है।

'वाह गनेसी ! आह गनेसी !'

"गनेसी..!" हर तरफ उसके ही नाम का शोर है। लोग मतवाले हुए जा रहे हैं।

"गनेसी....!" इस बार आवाज़ थोड़ी तीव्र हो गयी थी। गनेसी का नाच पूरे उफान पर था। दर्शक जैसे उसकी लचकती कमर देख कर पागल हुए जा रहे थे।

"गनेसी......!" तीसरी दफा जब यही आवाज़ और अधिक तीव्रता से गूँजी तो उसकी नींद खुल गयी। नाच में भंग पड़ गया था। उसे लगा जैसे इस बार ड्योढ़ी के भूमिहार उसे पकड़ने आ रहे हैं और रात वाला बकाया नाच दिन में नचवा कर चुकता करेंगे।

"गनेसी !" अरे बाप रे ! ई तो मालकिन बोल रही हैं। हड़बड़ा कर उठ गया गनेसी।

"जी।" बोलते समय खखार फंस गई उसके गले में।

"कब से आवाज़ लगा रहे हैं। सुनाई नहीं पड़ता है क्या तुमको।"

"जी खलिहानी में रहियय त पते नै चललै।" गनेसी ने दांतों से जीभ काट कुनमुनाते हुए कहा। गनेसी की भाषा अंगिका, बज्जिका और मगही के मिलान से बनी बोली का अपभ्रंश स्वरूप है।

"दुनु गाय को गौशाला से निकाल के खलिहान में बांध दो। कारू को साथ मत बांधना और सब बाछी का पगहा खोल दो। जुआठा मत खोलना।" माँ ने घर के भीतर से आवाज़ लगाई।

कारू हमारे बैल का नाम था। इसका जोड़ीदार मारू पिछले बरस ठंड लगने की वजह से चल बसा था। दोनों बैलों का नामाकरण मैंने ही किया था। कारू इसलिए क्योंकि उसके पुट्ठे पर काले और चितकबरे रंग की महीन धारियां थी और मारू इसलिए कि वो एक नम्बर का मरखण्ड था। आदमी हो या जानवर मारू हर किसी को अपने सिंग से हुरपेटने की फिराक में रहता था। अचानक से मारू के जाने के बाद कारू उदास रहने लगा था। चिड़चिड़ा भी हो गया था। किसी को भी पास से गुजरते देख सिंग लहरा कर फुफकारने लगता था। पर कारू ने आज तक गनेसी या मुझ पर ग़ुस्सा नहीं दिखाया था। माँ मुझे अक्सर कारू के पास जाने से मना करती थी। इसलिए जानवरों की सानी-पानी ले कर गोबर गोइठा और दूध दुहने की सारी ज़िम्मेदारी गनेसी के उपर ही थी। कारू को शायद अब भी उम्मीद थी कि मारू एक दिन लौट कर ज़रूर वापस आएगा पर खलिहान में खड़े ट्रैक्टर को देख कर उसका मन उदास हो जाता और भवावेश में वो मारू के खूंटे को चाटने लगता।

इसी बीच माँ की आवाज़ फिर से गूँजी।

"गनेसी, एक बार थोड़ा गोपीनाथ के दुकान पर देख कर आओ तो कि ई वहां किसके साथ चाय भिड़ाने में व्यस्त हैं ?"
गनेसी अभी मुड़ता ही कि पिताजी का स्वर सुनाई दिया।
"अरे भई हम कोई चाय-वाय नहीं भिड़ा रहे थे। सियाराम बाबू मिल गए तो बस बात होने लगी। उनका लड़का पिंटू भी तो दिल्ली में ही रहता है न।"

पिताजी ने साथ लाया थैला चौकी पर रखा और गनेसी की ओर मुखातिब हुए, "सुने कल बहुत ज़ोरदार नाचे हो सट्टा में, पूरा ड्योढ़ी पर तम्हारा ही चर्चा हो रहा है। कहाँ से सीखे इतना बढ़िया नाचना जी।" पिताजी की बात सुन गनेसी ने मुस्कुराते हुए शर्म से मुड़ी नीचे गड़ा ली। पिताजी ने जेब से 20 रुपया निकाल उसे दिया और थोड़ी देर बाद आने को कहा। गनेसी ने रुपये अपनी अंटी में बांधे और माँ को आता देख फुर्रर से वहां से निकल गया जैसे उसे आभास हो गया हो कि 20 रुपये पर मुसीबत आने वाली है।

"इसको पैसा क्यों दिए ? कल ही तो तीन किलो चावल ले कर गया था।"

"अरे जाने दो, बहुत काम करता है। वैसे भी और कोई साधन तो है नहीं इसके पास परिवार पालने का।" पिताजी ने चापाकल से अपने हाथ पैर धोए और घर के भीतर प्रवेश कर गए। माँ ने चौकी पर पड़ा थैला उठाया और उनके पीछे हो लीं। घर के अंदर पहुंचते ही पिताजी ने चारों तरफ नज़र दौड़ाई। "मनु कहां है ? मनु...मनु...!" पिताजी की प्रश्नसूचक नज़रें माँ की ओर हो गयीं। इससे पहले की वो कुछ पूछते माँ का जवाब पहले से तैयार था,

"मनु आज दिल्ली जा रहा है न तो अपने दोस्तों से मिलने गया है। आ जायेगा थोड़ी देर में।" माँ ने आश्वश्त किया।
"ये हो न हो पक्का क्रिकेट खेलने गया होगा। इसको आज भी चैन नहीं। आज शाम की ट्रेन है और ये फील्ड में उधम मचाने में व्यस्त है।"

"उफ्फ़ हो ! आप तो बेवजह परेशान हो रहे हैं। ट्रेन तो शाम में है और अभी तो दस ही बजा है।"

"हाँ तो पटना पहुंचने में भी तीन घण्टा लगता है।" पिताजी की आवाज़ थोड़ी तीव्र होती जा रही थी। "पूछ लो अपने लाडले से, दिल्ली जा कर पढ़ेगा-लिखेगा भी या वहां जा कर भी वैसे ही धमा-चौकड़ी करेगा जैसा सियाराम सिंह का बेटा पिंटू कर रहा है।"

"अब बस भी कीजिये। पिंटू से हमारे मनु का तुलना कीजिये भी मत। वो तो कहां गया था कलेक्टर बनने और वहां जा कर किसी पंजाबिन लड़की के चक्कर में पड़ गया। हम तो सुने हैं शादी भी कर लिया है उसी पंजाबिन से।" माँ ने आशंका जाहिर की।

"अभी सियाराम सिंह से वही तो बात हो रही थी। बड़े परेशान लग रहे थे। कह रहे थे मनु दिल्ली जा रहा है तो एक बार पिंटू की भी खोज-ख़बर ले ले। पिछले डेढ़ महीने से एक बार भी फोन नहीं किया है घर पर। उसकी माई बहुत परेशान है।"

"बताइए भला, माँ-बाप अपने बाल-बच्चा को कितना जतन से पाल-पोष के बड़ा करता है कि बड़ा हो कर कुछ करेगा। जीवन का सहारा बनेगा। लेकिन देखिए इस नालायक को, यहां माई बेटा के वियोग में तड़प रही है और वहां वो लड़का पंजाबिन

लड़की के मोह-पाश में सब बिसरा दिया।" बोलते-बोलते माँ की आवाज़ में हल्की सी नमी आ गयी।

"इसीलिए तो तुमको कह रहे हैं अच्छे से समझा दो अपने पूत को कि अब ये लड़कपन बंद करे और जिम्मेदार बने। आईपीएस बनने जा रहा है। यूपीएससी ना सही बीपीएससी भी क्लियर कर लिया तो पूरे बिरादरी में नाम हो जाएगा। सब कहेंगे, ई देखो हेडमास्टर का लड़का डीएसपी बन गया।" पिताजी इस वाक्य को बोल कर ही अभिभूत हो गए थे।

"देखिएगा, हमारा मनु एक दिन ज़रूर आपका नाम रौशन करेगा।" माँ की बातों में भी ओज झलक उठा।

"हां वो तो ठीक है पर पहले ये लड़का तो आ जाए।" पिताजी ने पलँग पर बैठते हुए अपनी कलाई घड़ी की तरफ नज़र दौड़ाई और दीवार घड़ी से अपनी एचएमटी घड़ी की सुइयों का मिलान करने में व्यस्त हो गए।

"अच्छा एक बात पूछें..?" माँ ने पलँग पर बिछे चादर की सिलवट को ठीक करते हुए कहा।

"हां पूछो।"

"ये पंजाबी तो पंजाब में न रहता है। फिर ये सब दिल्ली में क्या करने आ गया ?"

"क्यों, इससे तुमको क्या दिक्कत है ? कोई कहीं भी रह सकता है। पंजाबी तो पटना में भी रहता है।" पिताजी अभी भी अपनी एचएमटी में ही व्यस्त थे।

"अच्छा सुनिए, आप मनु को बोल दीजिएगा कि कमरा वहां बिल्कुल न ले जहां पंजाबी सब रहता है।"

"पर पंजाबी तो दिल्ली के हर कोने में बसा है। अब तुम्हारे कहने से या तुम्हारे बेटे के लिए सबको वहां से निकाल तो सकते नहीं। और रही बात कमरे की तो ये मनु और उसके दोस्त ही जानें कि दिल्ली में कहाँ बसेरा डालना है।" पिताजी ने उसी व्यस्तता में कहा।

"अच्छा सुनिए !"

"अब क्या है ?"

"ये पंजाबिन लड़की क्या सच में बड़ी सुंदर होती है। एकदम गोरी-चिट्टी कि जो देखे बस देखता ही रह जाय।" माँ ने झेंपते हुए पूछा।

"अब सुनें तो हम भी हैं कि बहुत सुंदर होती है।" पिताजी एचएमटी की सुइयों के मिलान से अब मुक्त हो चुके थे। कलाई घड़ी को उन्होंने बगल वाले टेबल पर रखा और आगे जोड़ा, "पिंटू का किस्सा सुन ही रही हो कि कैसे पंजाबिन लड़की के चक्कर में अपनी माई को भुला दिया।"

इतना सुनते ही माँ सोच में पड़ गयी। उनकी नज़र दीवार पर टंगी मेरी एक बचपन की तस्वीर पर टिक गई। मैं इस तस्वीर में एक काठ के घोड़े पर बैठा हूँ जो मैंने ज़िद कर के गुरूपुरब के मेले में खिंचवाई थी। वहां और भी बच्चे थे जो स्टूडियो में मौजूद काठ के हाथी, बाघ, शेर, हवाई जहाज़ और मोटरसाईकल पर बैठ फ़ोटो खिंचवा कर चहक रहे थे। पर मुझे घोड़े पर ही बैठना था क्योंकि मैंने सुना था घोड़ा राजाओं की प्रिय सवारी होती है। महाराणा प्रताप का घोड़ा चेतक दुनिया का सबसे तेज़ घोड़ा था। श्याम नारायण पांडेय लिखित कविता 'रण बीच चौकड़ी भर भर

कर चेतक बन गया निराला था, राणा प्रताप के घोड़े से पड़ गया हवा को पाला था' वाली कविता मुझे कंठस्थ याद थी। मेरा मानना था कि चेतक मेरे मामा की लाल बुल्लेट से भी तेज भाग सकता है। एक और महत्वपूर्ण कारण था घोड़े को मेरी प्रिय सवारी बनाने का। वो यह कि जो लोग घोड़े से चलते हैं उनको सुंदर लड़की मिलती है। मैंने कई सारी फ़िल्मों में देखा था जो हीरो घोड़े से आता है उसको सुंदर हेरोइन मिलती है। आज़ाद सिनेमा में धर्मेंद्र घोड़े से आया तो उसको हेमा मालिनी मिली। बेताब में सन्नी देओल को घोड़े की वजह से ही अमृता सिंह मिली। और तो और सुनील दत्त जैसा हीरो भी घोड़े के कारण ही जानी दुश्मन में रीना रॉय जैसी हेरोइन को उड़ा ले गया था। अमिताभ बच्चन को मुकद्दर का सिकंदर में राखी इसलिए नहीं मिली क्योंकि वो बुल्लेट से आया था। शादी-ब्याह में दूल्हा भी शायद इसीलिए घोड़े पर बैठता है कि उसे सुंदर लड़की मिलने की उम्मीद होती है। घोड़े की सवारी मेरे लिए सुंदर लड़की पाने का सबसे सशक्त माध्यम था भले वो घोड़ा काठ का ही क्यों न हो। मेरे मामा और मामी में बहुत झगड़ा होता था और मामी रुठ कर अक्सर अपने मायके चली जाती थी। मामा के पास बुल्लेट थी घोड़ा नहीं। कितनी बार मन मे आया कि मामा को समझाऊं कि मामा बुल्लेट बेच दीजिये और घोड़ा ले आईए। मामी आ जाएंगी। पर मामा की गुस्से से तैरती बड़ी-बड़ी आँखों से मुझे हमेशा डर लगता था। कुछ न सही तो अपने पड़ोसी गयालाल से ही कुछ सीख लेते। गयालाल के पास टमटम है। गयालाल की बीवी आज तक उसको छोड़ कर नहीं गयी।

एक दर्जन ममेरे, मौसेरे और चचेरे भाइयों में सबसे गोरे होने का ईनाम मुझे बचपन से ही मिलता रहा था। दादी-नानी की परी कथाओं में सबसे सुंदर राजकुमार मैं ही होता था जिसका राज-पाट धोखे से उसके भाई छीन लेते हैं। राजकुमार के पास सिर्फ एक घोड़ा होता है जिस पर सवार हो कर वो अपने भाइयों को लड़ाई में हरा देता है। राजकुमार की इस लड़ाई में एक जादू वाली सुंदर परी उसका साथ देती है जिससे शादी कर वो दोनों राजा-रानी बन जाते हैं और फिर साथ में घोड़े की सवारी करते हैं। माँ इस काठ के घोड़े पर बैठे उसी राजकुमार को निहार रही थी और शायद उस परी के बारे में सोच रही थी जो एक दिन इस राजकुमार के साथ इस घोड़े पर बैठेगी। पर अगर वो परी कोई पंजाबिन हुई तो...! माँ का मन बस इसी आशंका से घिरा जा रहा था। इससे पहले कि माँ कुछ और गहरे विचारों में खोती, पिताजी के प्रश्न ने उनकी तंद्रा तोड़ी।

"कहाँ खो गयी ? तुम कहीं ऐसा तो नहीं सोच रही कि मनु भी पिंटू जैसा ही न कुछ कर दे।"

"जी नहीं, हमको हमारे मनु पर पूरा भरोसा है। वो ऐसा-वैसा कुछ नहीं करेगा।" माँ ने त्वरित प्रतिक्रिया दी।

"जब भरोसा है तो चिंता क्यों करती हो। जाने दो दिल्ली और जहां भी रहना चाहता है रहने दो।" पिताजी ने अपनी बात खत्म ही कि थी कि मैं मानव शर्मा यानी की इस कहानी का सूत्रधार, धूल में लिपटा और पसीने से नहाया हुआ माँ... माँ.. की इको के साथ घर में प्रकट हुआ। पिताजी को सामने देख एकपल को सकपकाया ज़रूर क्योंकि इस वक़्त वो अमूमन स्कूल में होते

हैं। फिर याद आया कि आज मुझे पटना से दिल्ली के लिए ट्रेन पकड़नी है और वो पटना तक मेरे साथ चलने वाले हैं। शायद इसीलिए उन्होंने आज स्कूल बंक किया है। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि पिछली बार कब उन्होंने स्कूल बंक किया था। माँ बताती है मेरे पैदा होने वाले दिन भी पिताजी सिर्फ दो घण्टे के लिए अस्पताल आए थे। संस्कृत का मंत्र मेरे मुलायम कानों में फूंका और वापस स्कूल चले गए। पिछले साल उन्हें निमोनिया हुआ था। उस बीमारी में भी वो तपते शरीर स्कूल पहुंच जाते थे। कोई बारह बरस पहले बड़े ज़ोरों की बाढ़ आई थी। गंगा जी पूरे उफान पर थीं। गांव के गांव लील लिए थे गंगा जी की प्रचंड धारा ने। पर पिताजी का विद्यालय प्रेम उस आपदा में भी टस से मस न हुआ। ट्रैक्टर के ट्यूब की नाव बना उसे खेते हुए स्कूल पहुंच गए थे। पर ये और बात थी कि उनका विद्यालय गंगा जी की पहली थपेड़ में भुरभुरा कर गंगा जी में ही विलीन हो गया था। पर आज इतने सालों बाद पिताजी स्कूल से गैरहाजिर हुए हैं सिर्फ मेरे लिए। आज जब मैं ज़िंदगी के नए सिरे ढूंढने दिल्ली जा रहा हूँ अपने आप को गढ़ने के लिए। कुछ बनने के लिए। आज जब मैं जीवन के नए आयाम स्थापित करने एक अपरिचित और दूभर संसार में कदम रखने जा रहा हूँ तो वो मेरे साथ रहना चाहते हैं। यह ठीक वैसे ही है जैसे पहली बार जब मैंने चलना सीखा होगा तब भी मुझे उनकी अंगुलियों के सहारा मिला होगा। ठीक वैसे ही जब मैंने उनके कांधे पर बैठ कर पहली बार गुरूपुरब का मेला देखा होगा। और ठीक वैसे ही जब चिड़ियाघर के पिंजड़े में बंद शेर को देख कर मैं डर के मारे उनसे दुबक गया था तब उन्होंने मुझे निडर

हो कर अपलक शेर की आँखों में देखने की हिम्मत दी थी और जब शेर ने पलकें मिचकाई तो मैंने तोतली ज़ुबान में कहा था, "ऐ छेल हमतो आंथ मत मालो, हम ललती हैं त्या।"

हम अपने पिताओं का आकलन पढ़ाई का ब्यौरा लेने वाले एक कठोर निरीक्षक तथा मंथली बजट और रोज़मर्रा की ज़रूरतों को पूरा करने वाले सबसे सशक्त आर्थिक श्रोत के रुप में ही करते हैं। हम एक पितृप्रधान देश में रहते हैं जिसे भारत माता कह कर संबोधित किया जाता है। पिता के प्रेम और स्नेह को माँ के लाड़ प्यार के समक्ष कमतर आंकने की ये रूढ़िवादी परंपरा इस देश में सदियों से चली आ रही है जिसका निर्वहन मैं भी अपने जन्म काल से पूरी तन्मयता से करता आ रहा हूँ। और फिर मैं ही क्यों संभव है मेरे पिता ने भी यही किया हो और कदाचित उनके पिता ने भी। मेरे सभी दोस्तों के विचार भी मेरे मूल भावों से मेल खाते हैं। भारतवर्ष में अपने-अपने पिताओं के बलिदान को अंडरएस्टीमेट करने वालों की एक बड़ी जमात खड़ी है। मैं कोई अपवाद नहीं हूं।

पटना के लिए निकलने से पहले माँ ने कई तरह के विधान करवाए। पंडित जी ने मंत्र पढ़े और इस एवज़ में उन्हें जरी वाली धोती, 501 रुपये व चांदी की मछली दान में दी गयी। ज़र्रा बाबा के मज़ार से लाए गए लाल धागे वाली ताबीज़ को मेरे गले में पहनाने की नाकाम कोशिश की गई। हार कर माँ ने वो ताबीज़ मेरी बांह पर बांध दी। मछली खिलाई गयी, दही चटवाने की रस्म भी हुई। पैरों में शनिदेव का काला धागा बांधा गया जो माँ पिछले शनिवार को ही शनि मंदिर से ले कर आई थी। इन सब के

अलावा तमाम तरह की नसीहतें व हिदायतें दी गईं। खूब मन लगा कर पढ़ना..बाज़ार का कुछ भी मत खाना..पिंटू से दूरी बनाए रखना और सबसे अंत में..पंजाबी मोहल्ले में कमरा मत लेना ख़ास कर उन मोहल्लों में जहां पंजाबियों की जवान बेटियां हों। हर ताक़ीद को दिमाग में पैबन्द कर लेने के बाद माँ के पैर छू कर मैं जीप में बैठने ही वाला था कि गनेसी ने उत्साह में कहा, "भिया जी ऊ देखिए, नीलकंठ। नीलकंठ देखने से जतरा बनता है।" मैंने हंसते हुए जामुन की डाल पर बैठे नीलकंठ को देखा और जीप में बैठ गया। माँ ने नीलकंठ को देख श्रद्धा से हाथ जोड़ लिए।

2

"कृप्या ध्यान दें, पटना से चलकर मुगलसराय, कानपुर के रास्ते नई दिल्ली जाने वाली गाड़ी संख्या 2393 अप सम्पूर्ण क्रांति एक्सप्रेस कुछ ही समय में प्लेटफार्म क्रमांक दो पर आ रही है।" पटना जंक्शन पर इस महिला की उद्द्घोषणा सुनते ही मैं पिताजी के साथ प्लेटफार्म नम्बर दो की तरफ रवाना हो गया। प्लेटफार्म नम्बर दो पर मेरी चौकड़ी सचिन, प्रिंस, सुधीर और प्रवीण अपने-अपने सिपाहसालारों अर्थात पिताओं के साथ वहां पहले से मौजूद थे। हम वो पंचरत्न थे जो पिछले तीन बरस से साथ थे। पिछले साल अजय देवगन वाली गंगाजल देख कर ख़ून में ऐसा उबाल आया कि तय कर लिया हमें भी एसपी अमित कुमार जैसा बन कर दिखाना है। सचिन यूं तो शूल के मनोज बाजपेयी से ज़्यादा प्रभावित था, पर चूंकि समर प्रताप सिंह एक दारोगा था और दारोगा की एसपी के आगे चलती नहीं तो सचिन ने भी अपना गोल बदला और एसपी अमित कुमार बनने वाली धारा में शामिल हो गया। बचपन से ही सामाजिक सद्दोश्येता को चाह रही थी। इसी चाह के बलबूते बिहार का सिस्टम चेंज करना था। हालांकि, बिहार में सिस्टम कट्टा से चेंज होता है। पर हम अलहदी सोच वाले थे। हमने कट्टा के बजाय लाल बत्ती का चयन किया।

हमारे वहां पहुंचते ही मेरे चारों सहचरों ने पिताजी के पैर छूने की रस्म अदायगी की। बदले में मुझे भी अपने माता-पिता के सिखाये आदर्शों का प्रदर्शन करना था तो मैंने भी पलक झपकते

ही अन्य पिताओं के पैर छुए। भारतवर्ष में चरणस्पर्श करना हमारी पुरातन संस्कृति का द्दोतक है। साथ ही साथ प्रणाम करने वाले की कमर कितनी झुकी तथा उसके हाथ पैर पड़वाने वाले सज्जन के घुटनों से कितना नीचे गए यह उसके सामाजिक व नैतिक प्रतिमान को परिलक्षित करता है। प्रार्थी की मेरूरज्जा का लचीलापन हमारे समाज में विशुद्ध संस्कारी होने का प्राथमिक तथा प्रबल मापदण्ड है। जिसने दण्डवत किया हो या सीधा पैरों में लोट गया हो वो उच्चतम दर्ज़े का संस्कारी। जिसने झुक कर सामने वाली की एड़ी अथवा अंगूठे को स्पर्श किया हो वो मध्यम दर्ज़े का संस्कारी और जिसने आधे-अधूरे झुक कर चरणस्पर्श की महज खानापूर्ति की हो वो औसत दर्ज़े का संस्कारी। संस्कारों का आभाव कभी रहा नहीं था मुझमें पर पता नहीं कैसे मैं अंतिम दर्ज़े का शील प्राणी बन गया था जिसके हाथ सामने वाले सज्जन के घुटने और टेहुने के बीच अक्सर अटक कर रह जाते थे।

"तनिक और झुको बबुआ, लगता है पैर पड़ाई की विधि का पूरा ज्ञान नहीं है तुमको। इसको बिलैया प्रणाम बोलते हैं। चरणस्पर्श करना है तो पूरे सलीके से करो।" प्रवीण के पापा ने कहा और हंसते हुए मेरी पीठ पर एक धौंस जमा दी।

"वकील बाबू, ई लोग आज-कल का लड़का है। नया सोचवाला। हमलोग के जमाने का रीत-संस्कार से ई लोग का कहां कोई वास्ता होगा।" प्रिंस के पापा ने उनका समर्थन किया। इस बार मैं हल्का सा झेंप गया।

"मनु हमारा पैर छुआ तो लगा कि जैसे ये हमारा धोती की खींच लेगा।" प्रवीण के पापा फिर से हंस पड़े। मैं समझ गया कि

वकील चाचा आज पूरी तरह मुकदमा करने की फेर में हैं। पिताजी के पास उभरे घटनाक्रम पर मुस्कुराने के अतिरिक्त और कोई चारा था नहीं, सो संकोचवश मुस्कुराना पड़ा। मैं ताड़ गया और बात मुझे अखर गयी। मैंने ग़ुस्से में कनखियों से प्रवीण की ओर ताका तो वो मेरी तरफ देख कर मंद-मंद मुस्कुरा रहा था। मैंने मन ही मन कहा, ' प्रवीण, आज तेरे पापा ने मेरे पिता के सिखाए संस्कारों का जो मज़ाक उड़ाया है उसकी कीमत तुझे सूद-समेत चुकानी पड़ेगी कुत्ते !' कुत्ते इसलिए कहा कि उस दिन सच में बड़ा ग़ुस्सा आया था ! और वैसे भी कुत्ता तो मन में बोला था ! मन की बात भला कौन सुनता है! तदुपरांत दोस्ती का लिहाज़ और उसकी मुस्कान का सम्मान करते हुए मैंने भी एक छिछली सी मुस्कान उसकी तरफ दे मारी।

"अभी देखे नहीं, यही सारे लोग आपस में कैसे मिले ? सब एक-दूसरे को हाय-हल्लो बोलते हुए गले मिले ! जबकि हमलोग अपने छात्र जीवन में एक-दूसरे को जय हिंद और नमस्कार बोलते थे।" सचिन के पिता ने भी अपने विचार रखे।

"ज़माना बदल गया है भाई साहब। दिल्ली जैसे बड़े शहर की ज़िंदगी गाँव-खेड़े की ज़िंदगी से अलग है। वहां रहने-विचरने का एक अलग सलीका है। अब हमारे बच्चे भी नई सोच रखते हैं और नई संस्कृति का हिस्सा बनना चाहते हैं तो ये अच्छी बात है न।" पिताजी ने सहज भाव से कहा तो सभी पिताओं ने उनकी बात पर समवेत स्वर में हामी भर दी।

हाय...हल्लो वाला शिगूफ़ा हम पांचों ने अभी कुछ दिन पहले ही शुरू किया था। हमने तय कर लिया था कि अगर हमें

आईपीएस अमित कुमार बनना है तो बहुत कुछ बदलना होगा। मसलन मिलने पर हाय.. हल्लो कहना है। समय के हिसाब से गुड मॉर्निंग, गुड आफ्टरनून, गुड इवनिंग और गुड नाईट बोलना है। एक-दूसरे से अलग होते समय बाय-बाय बोलना है। अन्यथा कुछ दिनों पहले तक हमारी अभिवादन क्रिया.. का हो..का रे और कैसे हो बे..तक सीमित थी। हालांकि, हमने 'साला' शब्द का प्रयोग बारहवीं की परीक्षा के बाद शुरू किया था, क्योंकि ग्यारवीं कक्षा तक 'साला' एक गाली हुआ करती थी। सुधीर पिछले पांच साल से अपनीं माँ और भैया के साथ पटना में रह रहा था। पर उसकी शुरुआती पढ़ाई बनारस में हुई थी। इसीलिए उसके मुंह से 'भोंसड़ी' शब्द का निकलना बड़ी सहज बात थी। वैसे मेरे तीन सहचरों को इस घनघोर बनारसी शब्द से कोई परहेज़ नहीं था पर मुझे इस 'भोंसड़ी' से घोर आपत्ति थी। भले मुझे इसका अर्थ पता नहीं था पर इतना यक़ीन था कि औघड़ों और अवधूतों की नगरी के सर्वाधिक प्रचलित इस शब्द का मतलब हो न हो कोई बड़ी भयानक गाली ही होती होगी।

"भोंसड़ी के ! हम तहरा से कहत रहीं नु की पेमेंट पहिले उठा लिय जाव। अब बताव, हाइवा...ट्रैक्टर और पोकलेन कइसे चली। डीजल खातिर पइसा कवन दी..तहर बाप !" सुधीर के पापा ने कुछ इसी अंदाज़ में अपने एक मुलाज़िम को मोबाइल पर हड़काया। सुधीर के पापा ठेकेदार हैं और मेरी जानकारी में उन चंद पिताओं में हैं जो मोबाइल रखने के शौकीन हैं और बड़े रंगीन तबियत इंसान हैं। वो सुधीर को बीबीए की डिग्री दिलवा कर अपने प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में एमडी बनाना चाहते थे।

लखनऊ के किसी मैनेजमेंट कॉलेज में बात भी हो गयी थी पर ठीक उसी समय अजय देवगन हमारी ज़िंदगी में आया और कानों में सिस्टम बदलने का मंत्र फूंक गया। ठेकेदार महोदय शुरू-शुरू में अपने पुत्र को दिल्ली भेजने को कतई राज़ी नहीं थे। फिर सुधीर ने उन्हें नई उम्मीदें दीं। नए सपने दिखाए। ठीक वैसे ही जैसे अंदाज़ अपना अपना में आमिर खान ने अपने पिता देवेन वर्मा को दिखाए थे।

"पापा, अब आपको बहुत दिनों तक पेटी कॉन्ट्रैक्ट पर काम करने का ज़रूरत नहीं है। बस एक बार हमको एसपी बन जाने दीजिए फिर देखिएगा कैसे मंत्रालय से डायरेक्ट टेंडर दिलवाते हैं आपको।" पिता भी बेटे की जोशीली बातों में भाव-उन्मुक्त हो गए और मंत्रालय से डारेक्ट टेंडर पाने का सपना संजो बेटे को दिल्ली भेजने को तैयार हो गए। सुधीर के पापा अभी भी मोबाइल पर अपने मुंशी को गलिया रहे थे। हम सब उनकी बातें सुन कर खींसे निपोर रहे थे तो सुधीर शर्म के मारे सर झुकाए बगलें झांक रहा था।

पिताजी ने मुझे इशारे से अपने पास बुलाया और फुसफुसाते हुए पूछा, "ई सुधीर कौन जात है ?" उनके यकायक पूछे गए इस प्रश्न से मैं एकपल को असहज हो गया क्योंकि इस वक़्त उनसे ऐसे किसी सवाल की अपेक्षा नहीं थी। फिर भी मैंने अपने आप को सम्हालते हुए कहा, "पता नहीं। पर क्यों ?"

"देखो उसके पापा कैसे पब्लिक प्लेस में फोन पर गाली-गुफ़्ता करने में लगे हुए हैं। हमको कभी देखे हो ऐसे खुल्लम-खुल्ला गाली-गलौज़ करते हुए।" पिताजी को ठेकेदार चाचा का ये

आचरण कतई पसंद नहीं आ रहा था। कोई पिता अपने बेटे के सामने अपशब्दों का प्रयोग करे यह बात पिताजी के लिए असहनीय थी। ठेकेदार चाचा अब भोंसड़ी वाले से एक पायदान ऊपर उठकर मां-बहन की सर्वाधिक प्रचलित गालियों पर आ गए थे और उसका प्रयोग अपने मुंशी के लिए धड़ल्ले से किये जा रहे थे।

"पूरा नाम क्या है सुधीर का?" पिताजी ने अगला प्रश्न दागा।

"सुधीर कुमार राय।"

"अच्छा, तो यादव है !"

"पता नहीं। पर हमको लगता है शायद भूमिहार है।"

"पर अभी तो तुम बोले कि तुमको सुधीर की जाति का पता ही नहीं है।" पिताजी ने मेरी तरफ देखते हुए कहा।

"सुधीर बनारस का है न तो वहां का भूमिहार राय ही लगाता है।" मैंने कहा।

"बिहार में राय यादव होता है तो यूपी में भूमिहार कैसे हो जाएगा ?" पिताजी ने लगभग मुझे धमकाते हुए कहा। अब मेरी घिग्घी बंधती जा रही थी। समझ नहीं आ रहा था क्या करूँ ? कैसे पिताजी की जातिवादी समस्या का समाधान करूं ? सुधीर अभी भी अपने चेहरे पर उपेक्षा के भाव लिए रेल की पटरियों के किनारे बने बिलों से निकलते चूहों की क्रीड़ा देखने मे मग्न था। उसने एक नज़र मेरी तरफ दौड़ाई और मुझे उद्वेलित देख कर अपने चेहरे पर एक विशेष प्रकार का प्रश्नसूचक भाव बना दोनों भँवे ऊँचका कर 'क्या हुआ' का सांकेतिक प्रश्न उछाला। प्रत्युत्तर में मैंने भी अपनी आनन तंत्रिका की मदद से बने विशिष्ट मुद्रा में

होठों को तिरछा कर और आँखें मिचका कर उसे 'सब ठीक है' वाला भावपूर्ण उत्तर दे दिया। मेरे जवाब से संतुष्ट हो कर सुधीर वापस चूहों की धमा-चौकड़ी देखने मे लीन हो गया।

"याद रखना, जाति से ही संस्कार आता है..." पिताजी आगे का वाक्य पूरा करते कि इसी बीच प्रिंस की आवाज़ गूँजी, "मनु, रेलगाड़ी आ गई।" मैंने राहत की सांस ली।

सम्पूर्ण क्रांति एक्सप्रेस सरकती हुई प्लेटफॉर्म नम्बर दो पर आ चुकी थी। सम्पूर्ण क्रांति का नाम मुझे हमेशा से बड़ा आकर्षक लगता था। ऐसा लगता था जैसे यह नाम लेते ही मेरे पूरे शरीर का तापमान यकायक बढ़ गया हो। जैसे अंदर कोई ज्वालामुखी तप रहा है जो कभी भी फट सकता है। रामधारी सिंह दिनकर की कविता 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' का जयनाद करते हुए 5 जून 1974 को लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रांति का नारा पटना के ही गांधी मैदान में दिया था। इस नारे के ताप से दिल्ली ही नहीं पूरा देश सुलग गया था। लालू यादव, नीतीश कुमार, सुशील मोदी, रविशंकर प्रसाद, रघुनाथ झा और ना जाने कितने ऐसे नाम हैं जो जेपी की एक हुंकार पर सम्पूर्ण क्रांति की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व आहूत करने को तैयार थे। पिताजी और उनके कुछ दोस्त भी इस विशाल छात्र आंदोलन का हिस्सा थे। पिताजी को तो बाक़ायदा मिलर हाई स्कूल के अस्थाई जेल में डेढ़ महीने क़ैद भी रखा गया था। पिताजी ने मुझे बताया था कि जेपी के कहने पर गांधी मैदान में उपस्थित लाखों लोगों ने अपनी जनेऊ तक तोड़ दी थी और एक गगनभेदी नारा गुंजा था उस विहंगम छात्र समागन में। 'जात-पात तोड़ दो,

तिलक दहेज़ छोड़ दो, समाज के प्रवाह को नई दिशा में मोड़ दो ।' पिताजी ने कभी साफ-साफ नहीं बताया कि उन्होंने जनेऊ तोड़ी थी या नहीं पर जात-पात तोड़ने, दहेज़ छोड़ने और समाज को नई दिशा में मोड़ने वाला नारा खूब लगाया था। आज पिताजी ने उस नारे को पूरी तरह से भुला दिया था तभी तो उन्होंने सुधीर की जाति पूछी थी। पिताजी ही क्यों लालू, नीतीश, मोदी, पासवान सभी ने इस नारे को पूरी तरह से बिसरा दिया था। जिस सम्पूर्ण क्रांति को आधारशिला बना इन लोगों ने नवीन व सर्वोत्तम लोकतंत्र गढ़ने की कसमें खाई थीं। ठीक उसी नारे के उलट इन्होंने जात-पात और अगड़े-पिछड़े के वैमनस्य का नवीन जातिगत समीकरण गढ़ा। सामाजिक विभेद की इसी विकृत ढांचे को अपनी बुनियाद बना इन्होंने प्रजातंत्र के गलियारे में राजनीति का ककहरा सीखा और धीरे-धीरे जनतांत्रिक प्रणाली के मुहाने से होते हुए सत्ता के शीर्ष तक जा पहुंचे।

"कृप्या ध्यान दीजिए, पटना से चलकर मुगलसराय, कानपुर के रास्ते नई दिल्ली जाने वाली गाड़ी संख्या 2393 अप सम्पूर्ण क्रांति एक्सप्रेस कुछ ही समय में प्लेटफॉर्म क्रमांक दो से खुलने वाली है। यात्रियों से अनुरोध है कि कृप्या अपना स्थान ग्रहण करें।" लाउडस्पीकर से आई महिला की मधुर आवाज़ ने मेरी एकाग्रता भंग की। मैं जब भी स्टेशन आता था तो अक्सर सोचता था कि इस एक अकेली महिला ने पूरे रेलवे की जिम्मेदारी उठा रखी है। कौन सी ट्रेन कितने बजे आएगी और कितने बजे जाएगी ? ट्रेन किस प्लेटफॉर्म पर आएगी और किस प्लेटफॉर्म से जाएगी ; सब पता होता है इस महिला को ! पर अगर जो थोड़ी बहुत चूक

हो गयी ; मसलन जाने वाली ट्रेन का पता प्लेटफॉर्म नम्बर दो की जगह पांच बता दिया तो सारे यात्री हकलान हो जाएंगे। धक्कमपेल और भाग-दौड़ मच जाएगी। पर ऐसा लगता है कि इस महिला ने आज तक कभी कोई गलत घोषणा की ही नहीं है। तभी तो इतनी बजबजाती भीड़ और कोलाहल में भी लोग निश्चिंत हो कर अपने नियत स्थानों पर जा रहे हैं ...आ रहे हैं। एक महिला सब कुछ कितने क़ायदे से सम्हाल लेती है चाहे वो भागती ट्रेन हो या भागता नटखट मेरे जैसा बच्चा। बिल्कुल मेरी माँ की तरह।

मेरे चारों सहचर अपना-अपना स्थान ग्रहण कर चुके थे। गनेसी साथ आया था तो मुझे अपना सामान ट्रेन में रखने की ज़हमत नहीं उठानी पड़ीं।

"भिया जी, जल्दी जाके बैठ जाइए। ई ट्रेनवा अब खुलबे करेगी। हम सुने हैं ई ड्रैवरवा बहुते तेज रेलगड़िया चलाता है। रेलगड़िया को फांय-फांय उड़ैले दुइये दिन में डिल्ली पहुंचा देता है।" गनेसी ने पूरी गंभीरता से कहा।

"पर पटना से तो सब ट्रेन रात भर में ही दिल्ली पहुंचा देती है गनेसी।"

"नहीं भिया जी, हम भी एक बार डिल्ली गए थे न। पूरा दु रात तीन दिन लगाया था। ऊ सरवा ड्राइवरे चमरचीट था। मलेछ जइसा गड़िया चलाता था। पर ई वाला ड्रैवरवा तो रेलगड़िया को पटरिया से दु हाथ ऊपर दौड़ाता है। सब डरेवर-डरेवर का फरक है।" गनेसी ने कहा।

"सही कहते हो गनेसी।" मैंने मंद-मंद मुस्कुराते हुए कहा। मैंने अपनी जेब से 50 रुपये का नोट निकाल उसे देने की कोशिश

की तो उसने अपनी जीभ काटते हुए कान पकड़ ना..ना का इशारा किया।

"जहिना साहेब बन जाइएगा न तब पाँच सौ रुपय्या वाला कड़कौवा नोट लेंगे।" इतना कहते हुए वो मुस्कुरा उठा। मैंने उसकी आँखों मे हल्की सी नमी देखी तो वो झेंप गया। ट्रेन खुलने की फिर से घोषणा हुई और इस बार एक झटके के साथ सम्पूर्ण क्रांति आगे बढ़ने लगी। मैंने पिताजी के पैर छुए और लपक कर सम्पूर्ण क्रांति पर सवार हो गया। पिताजी ने बस इतना ही कहा कि अपना ख़्याल रखना कोई ज़रूरत हो तो बेझिझक बताना।

ट्रेन अपनी रफ्तार से आगे बढ़ती जा रही थी। सप्तमी का आधा चाँद हमारी निगहबानी के लिए हमारे साथ-साथ चल रहा था। मैंने ट्रेन की खिड़की से चाँद पहली बार देखा था। करमनासा नदी के ऊपर चाँद कितना प्यारा लगता है। हम बिहार के आख़री छोर को पीछे छोड़ आगे बढ़ गए थे। अब हम भी परदेसी हो गए थे। काश कि कोई अल्ताफ़ राजा का गाना बजा देता पर ट्रेन में सभी मुसाफ़िर नींद की आगोश में थे। मैं ही सीट पर बैठा खिड़की के बाहर रात के अंधेरे में बन रहे पेड़-पौधे, नदी, पोखरी, गाय, भैंस, बकरी, आदमी, औरत, बच्चे और गाँव के गाँव की बन रही विभिन्न आकृतियों को पहचानने की कोशिश कर रहा था। ट्रेन पश्चिम की तरफ भाग रही थी और मन पूरब की ओर छूटता जा रहा था। सब पीछे छूटते जा रहे थे। माँ, बाप, भाई, बहन, गाँव के दोस्त, गील्ली-डण्डा, खेत-खलिहान, कारू, गनेशी, आम का बगीचा, भूतहा ईमली कापेड़, बजरंगबली का मंदिर, स्कूल और मेरा लड़कपन। सप्तमी का चाँद भी पीछे छूट गया था। ट्रेन

पटरियों से दो हाथ ऊपर फांय-फांय भागती जा रही थी। सम्पूर्ण क्रांति दिल्ली जा रही थी और मैं अपने अंदर के जेपी को ढूंढ रहा था।

3

नई दिल्ली स्टेशन उतरने पर पता चला कि हमें कनॉट प्लेस नामक कोई जगह घूमनी होगी। हालांकि दिल्ली पहुंचने वालों के लिए ऐसा कोई कायदा नहीं था पर हुआ यूं कि इस शहर के मुखर्जी नगर जैसी किसी मोहल्ले में हमारे लिए कमरा ढूंढ कर रखा गया था। कमरा ढूंढ कर रखने की जिम्मेदारी सचिन के गाँव वाले रिश्ते में ममेरे भाई धर्मेन्द्र ने ले रखी थी। उसे फोन करने पर पता चला कि वो भाई साहब आज किसी अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य से पुराना किला जैसी कोई जगह घूमने गए हैं और दोपहर से पहले उनका हमसे मिलना संभव न हो पाएगा। अतः उन्होंने हमें मुखर्जी नगर में उनका इंतज़ार करने के बजाए कनॉट प्लेस घूमने की अजीबो-गरीब सलाह दे डाली। हमने भी उनकी सलाह यथावत मान ली।

सुधीर ने इस बाबत संसद भवन देखने की इच्छा व्यक्त की थी क्योंकि उसके मौसा स्टेनोग्राफर हैं वहां। उसने हल्की ज़िद की तो टैक्सी ड्राइवर ने टोका, "अटैक के बाद वहां की सिक्योरिटी इतनी तगड़ी है कि कोई कुत्ता भी अंदर नहीं झांक सकता भाईसाहब।" विशेष जानकारी उपलब्ध होने पर सुधीर शांत हो गया।

13 दिसम्बर 2001 को ही तो संसद भवन पर हमला हुआ था। संसद भवन पर हमला...! क्षण भर को सोचो तो यक़ीन नहीं होता कि हिंदुस्तान की सबसे सुरक्षित माने जाने वाली इमारत पर पाकिस्तान से आए कुछ आतंकवादियों ने हमला कर दिया। वो इमारत जहां देश के प्रधानमंत्री तथा देश के कोने-कोने से चुन कर आए जनप्रतिनिधि देश की नीतियां निर्धारित करते हैं ; उस

इमारत पर कुछ टुच्चे आतंकी हाथों में हथगोले और AK-47 लिए धावा बोल देते हैं। यह तो शुक्र है हेड कांस्टेबल कमलेश कुमारी का जिन्होंने बहादुरी दिखाते हुए सबको आगाह कर दिया पर दुःखद स्वयं इस आतंकी गोली-बारी में शहीद हो गईं। कुल चौदह लोग शहीद हुए थे और तकरीबन 23 लोग घायल। मैं सोचता हूँ कि अगर कमलेश कुमारी ने खतरे वाला अलार्म नहीं बजाया होता तो क्या होता ! तो क्या संसद में मौजूद सभी जनप्रतिनिधि मारे जाते ! या फिर बंधक बना लिए जाते ! और हमें आतंकियों की फिर कोई अनुचित मांग पूरी करनी पड़ती ! जैसे कंधार हाइजैक में हमें मजबूरन मसूद अज़हर जैसे दुर्दांत आतंकी को छोड़ना पड़ा था। सम्भव है इस बार भी देश को कुछ ऐसी ही कीमत चुकानी पड़ती या हो सकता था उससे भी बड़ा हर्जाना उठाना पड़ता। मसलन वो पूरा कश्मीर हमसे मांग सकते थे या फिर परवेज़ मुशर्रफ को हिंदुस्तान का तानाशाह बनाने की मांग कर सकते थे। यह भी हो सकता था कि वो दिल्ली का नाम बदलने की मांग करते। मिसाल के तौर पर इस्लामाबाद-2 अथवा लाहौराबाद या फिर कराचीबाद। वैसा कुछ भी जो उनलोगों को पसंद होता। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हमारे वीर सुरक्षाकर्मियों की वजह से। बाहर से आए सभी आतातताइयों की नज़र ना जाने दिल्ली पर ही क्यों होती है। अब वो महमूद गजनवी हो या चंगेज़ खान या फिर बाबर। सबका का मोहपाश दिल्ली से ही जुड़ा हुआ है। कुछ बरस पहले बिहार के राजीतिक अधिपति ने भी दिल्ली चलो का नारा दिया था। अधिपति को लगा कि यादवी वर्चस्व संकट में है। बिहार की संस्कृति का भंजन हो रहा है। उसे बचाना है तो जुलूस निकालो। खुले आसमान के नीचे एक स्वप्न संसार रचा गया। भ्रम ऐसा कि वास्तविकता की सुई कोची जा रही थी पर स्वांग टूटने का नाम ही न ले रहा था। वाह रे सपना ! अकल्पन कुछ यूं कि आंख के आगे से हटता ही नहीं जैसे अफीम की बत्ती सूंघ ली हो। शोषित तबके में चेतना का

संचार जिस स्तर पर लालू यादव ने किया वह वाकई विलक्षण था। वीपी सिंह ने तो सिर्फ अपनी राजनीतिक गोटी लाल करने के लिए आरक्षण नाम की अलख जगाई थी पर लालू और कांशीराम ने तो इसे ज्वाला बना दिया था। ज्वालों का समूह हुजूम के हुजूम निकल पड़ा सड़कों पर। गांधी मैदान में जहां देखो हरा पताखा और पताखे पर लालटेन। पर मन इससे नहीं भरा। बिहार की अस्मिता का संकट इससे कहीं अधिक गहरा था। तो दिल्ली चलो का नारा गूंज उठा। 'दिल्ली चलो' जैसे यह आह्वान अधिपति ने नहीं बल्कि खुद सुभाष चन्द्र बोस पटना के गांधी मैदान में कर रहे हों। अधिपति ने कहा था गरीब-गुरबा की लड़ाई है। दिल्ली पर चढ़ाई करना है। ट्रकों में भेंड़-बकरियों की तरह इन गरीब-गुरबों को ठूंस-ठूंस कर पटना पहुंचाने की तैयारी चल रही थी और फिर वहां से दिल्ली। मुसहरी टोला में मुनादी कराई गई थी कि दिल्ली में प्रधानमंत्री सब जनी(स्त्री) और मर्दाना को एक सेर आटा, दु किलो सतुआ, नून, तेल, नया लुग्गा(साड़ी) और पांच सौ पचपन छाप धोती देंगे। और साथ ही साथ पांच दिन तक तीनों बेर भर पेट खाना और मालपुआ अलग से। गनेसी की माँ एक सेर आटा, मालपुआ और नई साड़ी की चाह में दिल्ली पर चढ़ाई करने निकल पड़ी और फिर लौट कर कभी वापस नहीं आई। गनेसी अपनी माँ को ढूंढने दिल्ली भी गया था पर वो मिली नहीं। गनेसी की माँ अनपढ़ थी। ठीक से लिख-बोल नहीं पाती थी। और कुछ समय बाद राबड़ी देवी बिहार की मुख्यमंत्री बनी। हम कनॉट प्लेस पहुंच चुके थे। कितना अच्छा होता अगर कनॉट प्लेस का नाम बदल कर कमलेश कुमारी प्लेस कर दिया जाता तो। पता नहीं क्यों हिंदुस्तान के मंझोले और बड़े शहर अंग्रेजीदां मानसिकता में इतने जकड़े रहते हैं। अंग्रेज चले गए पिट्ठू छोड़ गए।

सबसे पहले दिल्ली के जिस वैभव ने हमें चकित किया वो था कनॉट प्लेस। जैसे कोई अलौकिक जगह हो। जिसे बस देखते रहने का मन करता हो। जी ऐसे मचलता है मानो आँखों के सामने

चटख सपनों वाली कोई आर्ट गैलरी घूम रही हो। स्वर्ग की पुरातन सुंदरता को नई सदी वाले कलेवर में सजा कर किसी ने दिल्ली में टांक दिया और नाम दिया कनॉट प्लेस। हज़ारों नियामतें हैं इस दिल्ली शहर में। उनमें ही से एक है कनॉट प्लेस। कनॉट प्लेस के इनर सर्किल में आने के बाद ही हमें एहसास हुआ कि दिल्ली को नई दिल्ली क्यों कहते हैं। अकबर वाली मुग़लया दिल्ली और अटल बिहारी वाली हिन्दूवादी नई दिल्ली का भेद हमें कनॉट प्लेस आने के बाद ही पता चला। ऊंची-ऊंची बीस-पच्चीस मंज़िला इमारतें। इमारतों से झांकते झरोखे और झरोखों से ताकते रंगीन ख़्वाब और ऊंची हसरतें। इन ऊंची और चौड़ी इमारतों के भीतर सब कुछ पल रहा था। कुछ एक इमारतें तो पूरी तरह से शीशे में पैबन्द थी। समझ नहीं आया कि शीशे की इतनी ऊंची दीवार किसी ने कैसे खड़ी की होगी। ऊपर से सारी इमारतें संज्ञा वाचक विशेषणों से अलंकृत थीं। गोपाल दास, बिड़ला टॉवर, हिमालय हाउस और ना जाने कितने सर्वनाम। सड़कों का भी कमोवेश यही हाल था बराखम्बा रोड, पंचकुइयां रोड, मिंटो रोड।

बिहार में सड़कों को अमूमन दो प्रकार के नामों से चिन्हित किया जाता है। पिच वाली पक्की सड़क और मिट्टी वाली कच्ची सड़क। गांव और छोटे कस्बों के दरम्यान कच्ची सड़क के खत्म होने के बाद एक टूटा-फूटा खड़ंजा होता है जो गांव और कस्बों का मिलान पक्की सड़क से कराता है। बिहार के कमोवेश प्रत्येक गांव और कस्बे का भगौलिक परिसीमन यही है। पर यहां दिल्ली में ना तो कोई खड़ंजा है और ना ही कोई कच्ची सड़क। यहां तो सिर्फ

पक्की सड़क है। दिल्ली वाली पक्की सड़कों के विषय में एक और बात बड़ी विस्मयकारी लगी। सड़क पर एक भी गड्ढा नहीं ! एक पल को तो बिना गड्ढ़े वाली एकदम समतल और चौड़ी सड़क देख कर दिमाग चकरा गया। मन में ख़लिश हुई कि काश ऐसी सड़कें बिहार में भी होती। हम ठहरे गंवई टाइप। सड़क में गड्ढ़ा और गड्ढ़े में सड़क का फ़र्क़ अभी तक मालूम नहीं था। ऊबड़-खाबड़ सड़क पर हिचकोले खाते चलना हम बिहारियों की आदत में शुमार था। पर यहां की सपाट और चिकनी सड़क और उस पर सरपट पर तहज़ीब से भागती महंगी और शानदार गाड़ियां। मर्सेडीज बेंज देखने का सौभाग्य भी पहली बार कनॉट प्लेस में ही मिला। मन में फिर से ख़लिश हुई ! काश कि पटना में मर्सेडीज बेंज दौड़ती ! तभी दिल ने मुझे कोंचते हुए कहा क्या ख़ाक मर्सेडीज दौड़ेगी ! वहां सड़क पर ओपल एस्ट्रा भी निकल जाए तो लोग घेर कर ऐसे खड़े हो जाते हैं जैसे कोई दुर्लभ यंत्र देख लिया हो ! याद नहीं है पटना के एक मशहूर नेत्र रोग विशेषज्ञ के साथ क्या हुआ था ! उन्होंने कितने अरमानों से फोर्ड एस्कॉर्ट कार खरीदी थी ! अरे वही फोर्ड एस्कॉर्ट, जिसका प्रचार लीएंडर पेस 1996 के अटलांटा ओलिंपिक में कांस्य पदक जीतने के बाद करते थे। पर हाय री किस्मत ! डॉक्टर साहब की एस्कॉर्ट लीएंडर पेस के एस्कॉर्ट जितनी भाग्यवान न निकली। बेचारी एस्कॉर्ट खुद का भी एस्कॉर्ट न कर पाई। कुछ कालाचोर निगहबानों की गिद्ध नज़र उनकी फोर्ड एस्कॉर्ट पर ऐसी पड़ी कि एक दिन वो चमचमाती कार बिहार के राजनीतिक अधिपति के रिश्तेदार के गोशाला में खूंटे से बंधी पायी गई। अपनी कचनार कार को इस

हालत में देख कर डॉक्टर साहब का कलेजा कट कर रह गया। यक़ीन नहीं हुआ कि जिस राजनीतिक अधिपति को उन्होंने अपना सर्वस्व माना। अपने रोज़गार और परिवार के संरक्षण के एवज़ में हर वर्ष उस अधिपति के चरणों में मोटा माल चढ़ाया। आज उसी अधिपति के लाडले रिश्तेदार ने उनके साथ ऐसी बाज़ीगरी कर दी है। डॉक्टर साहब ने अधिपति की मिन्नतें की। अधिपति ने लाडले रिश्तेदार की मान-मनौव्वल की। लाडला रिश्तेदार और उसके गुर्गे एक नम्बर के फड़बाज़। उनके लिए तो यह बिल्ली के भागों छींका टूटने जैसा था। आखिर कब तक साईकल, यामाहा, राजदूत और मारुति 800 की छिनतई कर पेट पालते। छिनतई और लूट-खसोट में रिश्तेदार और उसके गुर्गों का स्वर्णिम इतिहास रहा था। इसी रिश्तेदार ने अधिपति की पुत्री की शादी में मेहमानों को लिवाने के लिए पटना के शो-रूम से नई-नवेली गाड़ियों की खेप ज़बरन उठवा ली थी। बहरहाल, बात बन गयी। डॉक्टर साहब ने कार छुड़ाई की रसीद कटवाई और अपनी फोर्ड एस्कॉर्ट को गैराज में फिर ऐसा स्थापित किया कि दोबारा उसे पटना की सड़कों पर निकालने की जुर्रत नहीं की।

नई दिल्ली की सड़कों पर भागती इन मर्सेडीज बेंजों को कोई खतरा नहीं है। इन चमकदार कारों को न तो किसी अधिपति का डर है और ना ही उनके लाडले रिश्तेदारों का ख़ौफ़। ये कारें स्वछंद हैं। उन्मुक्त हैं। स्वछंद और उन्मुक्त तो कनॉट प्लेस भी है। दूधिया सफेदी और संगमरमरी चमक से लबरेज़ गोलाकार पायों पर टिका कनॉट प्लेस। और हर पाए से बंधे महीन लाल डोर में गूंथे दिल के आकार वाले लाल गुब्बारे। जो आसमान की तरफ मुंह

उठाए ऐसे मचल रहे थे मानो वे कनॉट प्लेस को भी अपने साथ हवा में उड़ा ले जाने को बेचैन हो रहे हों। असीम सपनों वाला यह लकदक दृश्य पूरे शरीर में हरारत भर रहा था। ऐसा लग रहा था किसी ने कनॉट प्लेस को लाल रंग से पोत दिया है। या यह भी हो सकता है कि कनॉट प्लेस की स्वाभाविक फ़िज़ा ही यही हो। जो भी था बड़ा अजीब नज़ारा था। जहां देखो नज़र वहीं टिक जाती थी। हम पांचो ने इतनी हाई-फाई जगह इससे पहले कभी नहीं देखी थी और ना ही देखा था बला की ख़ूबसूरत लड़कियों का ऐसा जमघट। लाल चमकदार फैशनेबल कपड़ों में लिपटी लाल चटखदार लिपस्टिक से सनी लड़कियां किसी लाल देश से आई लाल परियां लग रही थीं। कनॉट प्लेस शहद से लबरेज़ कोई जादुई वातायन लग रहा था जिसकी मिठास में आसक्त हो कर ढ़ेरों लाल चींटियां क्रमबद्ध तरीके से उस चिपचिपाहट में बिंधती चली जा रही थीं। तभी मेरी नज़र इमारत से बंधी एक लाल पताखे पर पड़ी जिस पर बड़े सुनहरे अक्षरों में लिखा था, 'हैप्पी वैलेंटाइन्स डे'। "अच्छा तो आज वैलेंटाइन डे है। तभी इतना चकाचक नजारा है।" मैंने चहकते हुए कहा।

"वैलेंटाइन डे वही डे होता है न जिसमें लड़की को आई लव यू बोल दो तो बदले में वो भी आई लव यू बोलती है।" प्रवीण ने उत्सुकतावश पूछा।

"जी नहीं। ऐसा कुछ नहीं है कि किसी लड़की को आई लव यू बोल दोगे तो वो निहाल हो जाएगी। बल्कि जिस लड़की के पीछे श्रद्धा भाव से महीनों से लगे हुए हो। उसकी गली के चक्कर काट-काट के घुमंतू भोटिया बन गए हो। उसकी गली का कुत्ता भी

तुमको देख कर भौंकना छोड़ चुका होता है क्योंकि उस गली में कुत्ते से ज्यादा तुम मंडराते हो। यह शुभ दिवस वैसे ही वाले भोटियायों को प्रेम निवेदन का विशेष अवसर प्रदान करता है।" मैंने प्रवचन सुनाया।

"मतलब गारण्टी है कि लड़की हाँ बोलेगी ही बोलेगी।" यह प्रवीण का तात्कालिक विश्लेषण था जिसे मैंने सिरे से नकार दिया, "कोई TV खरीद रहे हो कि गारण्टी मिलेगा। कोई एक्सचेंज ऑफर भी नहीं है कि आई लव यू के बदले आई लव यू ही मिलेगा। दुत्कार, फटकार, लात, थप्पड़ कुछ भी मिल सकता है। और अगर लड़की ज़्यादा भन्ना गयी तो सैंडिल से सोंट भी सकती है।"

"फिर वैलेंटाइन डे पर इतना ताम-झाम क्यों जब लड़की सेट होने का कोई गारण्टी ही नहीं है ?" प्रवीण ने इस प्रथा के प्रयोजन तथा उसकी सफलता की अनिश्चितता पर प्रहार किया। मैंने उसकी अकुलाहट शांत करने की कोशिश की, "भाई, खाली वैलेंटाइन डे से कुछ नहीं होता है। वैलेंटाइन डे अकेले नहीं है बल्कि इसका डे वाला पूरा कुनबा है। हर डे का अपना नियम कायदा है। अपना डिमांड है। जिसको फुलफिल करना पड़ता है। पूरा प्रोसीजर फॉलो करोगे तभी वैलेंटाइन डे फलित होता है।"
"मतलब..?"

"मतलब यह कि वैलेंटाइन डे कुल आठ भाई बहन है। रोज डे, प्रपोज़ डे, चॉकलेट डे, टेडी बियर डे, प्रॉमिस डे, हग डे और किस डे। इन सभी सात चरणों को सफलता पूर्वक पार करने के बाद ही तुम वैलेंटाइन डे पर विजय पताखा फहरा पाओगे।" मैंने पूरी रूप-रेखा रखी।

"ई कुल मिला कर हुआ सात। और आठवां वैलेंटाइन। पर ई सात डे मनाते कब हैं ? और पता कैसे चलेगा कि कौन सा डे किस दिन आता है ?" प्रवीण ने एक जिज्ञासु की भांति यह प्रश्न किया।

"सात फरबरी से यह त्योहार शुरू होता है और चौदह फरबरी को ख़त्म। जैसे नवरात्रि होता है न ठीक वैसे ही। वहां नौ दिन व्रत होता है यहां सात दिन का।"

"मतलब सात दिन भूखा रहना पड़ता है।"

"भक्क ! एकदम बकचोन्हरे हो का जी। भूखा रहने कौन बोला तुमको।"

"तुम ही न बोले कि सात दिन तक व्रत करना पड़ता है।" प्रवीण ने मासूमियत से कहा।

"अरे यहां व्रत का मतलब कुछ और है। अलग-अलग प्रावधान है जिसको हर दिन करना पड़ता है ताकि लड़की खुश हो।" मैंने हल्की झुंझलाहट के साथ कहा।

"हां तो झुंझला काहे रहे हो। हमको भी बता दो कि क्या-क्या करना पड़ता है। दिल्ली आए हैं तो इसका जरूरत कभी न कभी तो पड़ेगा ही। आज वैसे भी दिल्ली में पहला दिन है और पहले दिन ही परम् ज्ञान मिल जाए तो हर्ज ही क्या है। क्या पता इसी परम् ज्ञान के बलबूते यूपीएससी भी निकल जाए।" प्रवीण ने बत्तीसी निकाल दी।

हार कर मैंने भी कथा प्रारम्भ कर दी।

"तो सुनो, रोज डे पर लड़की को गुलाब का फूल दो। ध्यान रहे कि गुलाब लाल ही होना चाहिए। पिला, उजला या काला गुलाब दिए तो लड़की उसका मतलब कुछ और समझ जाएगी।"

"मनु, तुम प्रवीण को इतना भी कच्चा मत समझो।" सुधीर ने सेंधमारी की,"पंडी जी बहुत बड़ा खिलाड़ी है। गेंदा का फूल दे कर अपने मकान मालिक की नई-नवेली पतोहू को पटा लिया था।" सुधीर ने मसखरी की।

"अरे यार ऊ सब याद मत दिलाओ। सब पुराना बात है।" प्रवीण ने हल्की झेंप के साथ कहा। पर सुधीर की जीभ लपलपाने लगी।

"पंडी जी रोज सुबह-सुबह कंकड़बाग टेम्पो स्टैंड से नई-नवेली भाभी के पूजा-पाठ के लिए गेंदा का फूल ले कर जाता था कि भाभी खुश होंगी। और कुछ ही दिन में इसका असर भी हुआ। प्रवीण के इस घनघोर तप से भाभी खुश हो गईं। रोज सुबह-शाम चाय मिलने लगा। कभी-कभार नाश्ता भी मिल जाता। साले को हम भी उसी कमरे में रहते थे पर भाभी हमको पुछती तक नहीं। बस कमरे में आती इसको मुस्कुराते हुए चाय देती और चुप-चाप निकल जाती। हमको देखती भी नहीं। जैसे कि हम मिस्टर इंडिया के अनिल कपूर हों, उनको दिखलाई ही नहीं पड़ते हों। पिछले दशहरा में जब हम लोग कमरा खाली कर रहे थे तब भाभी प्रवीण को अपने कमरे में बुलाईं। हम भौंचक ! कि आज तो समझो पंडी जी का गोटी लाल हो गया। इधर पंडी जी का तो पूछो मत कि खुशी के मारे क्या हाल। उछलते हुए भाभी के कमरे में पहुंचा और पलँग पर लेट गया। भाभी कमरे में आयीं। अभी कुछ शुरू ही होता कि भैया भी कमरे में आ गए और प्रवीण को लेटे देख कर भाभी से पूछे - 'प्रवीण को दे दी क्या ?' प्रवीण अकचका गया ! काटो तो खून नहीं ! हड़बड़ा कर खड़ा हो गया ! हतप्रद प्रवीण

आँखें बड़ी कर के कभी भाभी को देखे तो कभी भैया को ! मन ही मन सोचे, क्या भैया के सामने ही भाभी मेरे साथ...हे भगवान ! प्रवीण ने दोनों हाथों की मुट्ठी को ज़ोर से बंद कर लिया। अकुलाहट में पैर के अंगूठे को अपनी हवाई चप्पल में इतनी ज़ोर से दबाया कि नाखून में दर्द होने लगा। तभी भाभी मुड़ी और प्रवीण की तरफ बढ़ीं। उन्होंने प्रवीण को धक्का दे कर पलँग पर बिठा दिया। फिर थोड़ी झुकी। दूधिया सफेदी में प्रवीण का मन खिल उठा। पर सामने भैया को देख कर उसने अकबकाहट में आँखें बंद कर लीं। तभी भाभी ने सिरहाने से बटुआ निकाला और उसमें से सौ-सौ का दो नोट निकाल प्रवीण की तरफ बढ़ाते हुए बोलीं - 'ये लीजिये।'

ये क्या है ? प्रवीण चौंका ! दो सौ रुपया ! तो क्या भाभी हमको दो सौ रुपया देने के लिए बुलाईं थी ! प्रवीण के अरमानों पर तो जैसे पानी फिर गया था। उसको कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे। प्रवीण की हालत पटना नगर निगम के नल के जैसी हो गयी थी। नल खोलो तो हड़हड़ की इतनी तेज आवाज आती है मानो पानी की धार से ज़मीन में छेद हो जाएगा और कुछ सेकेंड गरजने के बाद भक-भका कर फुस्स हो जाता है। बस सों-सों की आवाज़ आती है। प्रवीण बेचारा करता भी क्या। ना-नुकुर करते हुए दो सौ रुपया ले लिया। भाभी फिर मुस्कुराते हुए पूंछी- 'बताइये और क्या चाहिए ?' प्रवीण ने लजाते हुए भाभी की तरफ देखा तो उसके मन में गुड्डू रंगीला वाला गाना कौंध गया...हमरा हऊ चाही।" सुधीर की बात खत्म होते ही हम सब ज़ोर से हंस पड़े।

"हो गया तुम्हारा पुराण।" प्रवीण ने सुधीर को डपटते हुए कहा। "अरे उस समय आईडिया नहीं था। बस इतना पता था कि फूल देने से लड़की ख़ुश हो जाती है। नया-नया शादी हुआ था मकान मालिक के बेटा का। मकान मालिक का बेटा माने भैया जो थे सो हफ्ता-हफ्ता भर घर से बाहर रहते थे। भाभी जवान थी और कई बार हमको देख कर मुस्कुरा भी चुकी थी। तो सोचे कि चलो फूल दे कर अपना जुगाड़ सेट कर लिया जाए। अब हमको क्या पता था कि सेटिंग के लिए गेंदा नहीं बल्कि गुलाब का फूल देने का रिवाज़ है। वो भी लाल गुलाब।"

"कोई बात नहीं। यहां लाल गुलाब देने वाली ढेरों मिल जाएगी।" प्रिंस ने बगल से गुजरती हुई लड़की को ताड़ते हुए कहा।

"खैर, इसका छोड़ो। तुम आगे बताओ। रोज डे पर लाल गुलाब दे दिए। अब उसके बाद..?"

"उसके बाद आता है प्रोपोज़ डे। इस दिन लड़की को बोलना है कि तुम मुझे अच्छी लगती हो। चाहो तो अंग्रेजी में भी बोल सकते हो क्योंकि लड़की अमूमन अंग्रेजी से जल्दी प्रभावित हो जाती है।" मेरी बात पर प्रवीण एक पल को चिंतन में डूब गया। मन ही मन बुदबुदाया, "अच्छा तो अंग्रेजी में बोलना है..!" फिर अचानक से मेरा हाथ पकड़ कर कहा, "आई एम लाइकिंग यू।"

"धत्त, आई लाइक यू।"

"एम नहीं लगेगा..!"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"तुमको अंग्रेजी सीखना है कि आशिक़ी। साफ-साफ बताओ।"

"आशिक़ी।" प्रवीण के खींसे निपोर दीं, "अब इसके आगे..."

"प्रोपोज़ डे पर आई लाइक यू तक ही रहना है। हड़बड़ा कर आई लव यू नहीं बोल देना है। इसके बाद आता है चॉकलेट डे। इस दिन लड़की को 40,50 रुपय्या वाला बढ़िया चॉकलेट दो। भूल से भी दु रुपया वाला किसमीबार या पांच रुपया वाला पोमपीन्स दिए तो लड़की बमक के फायर हो जाएगी। इसके बाद टेडी बियर वाले दिन लाल भालू दो।"

"लाल भालू ! पर भालू तो काला होता है न..?" प्रवीण सिर खुजाने लगा।

"अबे खिलौना देना है। सचमुच का भालू नहीं पकड़ा देना है। वो देखो, ऊ जीन्स पैंट वाली लड़की गोदी में ले कर जा रही है न। वही भालू।" मैनें एक लड़की की तरफ इशारे से प्रवीण को दिखाया।

"अच्छा ! समझ गए। ....अब इसके आगे।"

"अब आगे क्या, इसके बाद आता है प्रोमिस डे, हग डे और किस डे। इन सात दिवसों को पूरे विधि-विधान से पूरा करने के बाद ही वैलेंटाइन बाबा तुम्हारे प्यार का गणित बिठाएंगे।" मैंने पीछा छुड़ाने की जुगत में कहा।

"पर किस डे, वैलेंटाइन डे से पहले क्यों आता है ? जब किस डे पर चुम्मा-चाटी हो ही गया तो समझो लड़की सेट हो गई। जब आई किस यू पहले ही कबूल हो गया तो फिर आई लव यू के लिए इतनी कवायद क्यों..?" प्रवीण ने दिनों के क्रमवार होने का

तार्किक विश्लेषण किया जिसमें उसे भारी संदेह नज़र आ रहा था। शंका निवारण की चाह में उसकी नजर मुझपर बैठ गयी।

"ज्यादा उतावले न हो। किस डे पर लड़की के होठों का रसपान वही लड़का करता है जिसका मामला पहले से टाइट हो। कोई भी लड़की बिना आई लव यू बोले किसी लड़के को किस कैसे कर सकती है। कॉमन सेंस लगाओ यार।" हल्की झुंझलाहट फिर से मुझ पर तारी हो गई।

"अच्छा तो ऐसा है। हम्म...।" प्रवीण ने आस-पास के जोड़ों की तरफ निगाह दौड़ा दीं, "लेकिन एक बात बोलें, सब डे तो ठीक है पर ई हग डे बहुत गंदा लगता है बोलने में। मन घिना जाता है। हग डे, मूत डे, पाद डे...ये भी कोई दिन हुआ। मोतिहारी में किसी को हग डे बोल दो तो वो सच में लोटा ले कर हगने चला जायेगा।" प्रवीण ने इतना बोलते ही हमसब ठट्ठा मार कर हंसने लगे।

"तुम टारगेट डे का तो जिक्र ही नहीं किए मनु।" कहते हुए सुधीर ने सिगरेट के धुएं का छल्ला हवा में उड़ा दिया। धुआं प्रवीण के गले मे फंस गया, "अब यह टारगेट डे कौन सी बला है ?"

मैंने छल्ले को पहचानने की कोशिश की पर जानकारी के आभाव में कंधे ऊचका दिए। "अबे सेक्स डे। वही तो टारगेट डे है। वैलेंटाइन डे का अगला चरण। कितने लोग तो वैलेंटाइन डे पर ही इस चरण को पूरा करने की फिराक में रहते हैं।" सुधीर ने फिर से धुएं की एक मोटी परत हवा में उछाल दी।

"तुम्हारा मतलब दिल्ली की लड़की शादी से पहले सेक्स के लिए तैयार हो जाती है..?" प्रवीण ने उत्सुकता में पूछा।

"और नहीं तो क्या ! बहुत फॉरवर्ड होती है दिल्ली की लड़की ! तुमको क्या लगता है आज के दिन ये सब लाल-लाल कपड़ा पहन कर क्यों घूमती है। वो इसलिए कि ये अपने प्रेमियों को रिझा सकें। जैसे गांव में लाल कपड़ा देख कर सांढ़ बौरा जाता है वैसे ही दिल्ली का लौंडा सब इनका लाल-लाल फ्रॉक और स्कर्ट देख कर मतवाला जाता है।" सुधीर ने बड़े ही वहशियाना तर्ज़ पर यह बात कही।

"सुधीर एकदम सही कह रहा है।" सचिन ने सुधीर की बची सिगरेट अपनी अंगुलियों में फंसा ली, "हमारे गांव बिहिया में नया-नया डॉक्टर साहब आये थे। जात के यादव थे। नाम था मदन यादव। उनकी एक साली थी जूही जो दिल्ली में पढ़ती थी। एक बार जूही अपनी दीदी और जीजा से मिलने बिहिया आयी। उसके आने के बाद हमारे गांव में जो तमाशा हुआ कि पूछो मत। पूरे गांव भर का नजारा ही बदल दी ऊ दिल्ली वाली लड़की।" इतना बोल सचिन यकायक चुप हो गया। मुझे ऐसा लगा कि शायद सचिन यह बात बोलना नहीं चाहता था पर बातचीत के क्रम में उसके मुंह से यह बात आवेग में निकल गयी। इसीलिए अब वो थोड़ा झेंप सा गया।

मैंने उसे कुरेदा, "अब चुप क्यों हो गए साहूकार महोदय। शब्द भी तराजू में तौल के बोलोगे क्या। ऐसा कौन सा कांड कर दी डॉक्टर की साली की तुम्हारे उज्जट गांव में भी तमाशा लग गया।"

बिहिया को उज्जट कहने पर उसने मुझ पर एक अर्थपूर्ण दृष्टि डाली। शायद अपने गांव के लिए उपयुक्त इस शब्द का प्रतिवाद करना चाहता था। पर उसने कुछ कहा नहीं बल्कि हमसब की मंशा भांपते हुए उसने नया माहौल तैयार कर दिया, "अरे बहुत लागबाज लड़की थी। पूरे गांव में जीन्स का हाफ पैंट और लाल टीशर्ट पहन कर घूमती रहती थी। डॉक्टर साहब का डेरा मेरे घर के बगल में ही था तो मेरे लिए यह नजारा आम था। हमलोग तो एक नारा भी गढ़े थे, 'मदन डॉक्टरी पक्कल दाढ़ी, मदना की साली बड़ी छिनारी'। अब डॉक्टर साहब पड़ोसी थे तो हमसब चाह कर भी कुछ नहीं बोल पाते थे। डॉक्टर साहब को भी इल्म था कि कहीं कुछ गलत न हो जाए। और एक दिन सच में कांड हो गया। हाई स्कूल के किरानी दयाल जी का बेटा मनोज, डॉक्टर की धगड़बाज साली के साथ लफा-सूटिंग करते हुए अरहर के खेत में रंगे हाथ धरा गया। बहुत बवाल हुआ। खूब हाय-तौबा मची। साला खेत भी मेरा ही था। डॉक्टर साहब बोले, हम दयाल और उसका बेटा पर रेप का केस करेंगे। किरानी डॉक्टर साहब का पैर पकड़ लिया बोला, 'डॉक्टर साहेब हमार लइका के जिनगी खराब हो जाई'।

'और जो लड़की का ज़िन्दगी खराब हुआ उसका क्या, डॉक्टर साहब गरज कर बोले'।

गांव के बुजुर्ग आए। पंचायत बैठी और तय हुआ कि या तो किरानी दो लाख रुपया दें या फिर अपने बेटे का ब्याह पीड़ित लड़की से कराएं। ब्याह का नाम सुन कर मनोज उछल पड़ा, बोला, 'हम अभी ब्याह करने के लिए तैयार हैं।'

डॉक्टर साहब को यह फैसला बिल्कुल मंज़ूर नहीं था, 'यह कैसा न्याय है? भला यादव की लड़की एक दलित के घर कैसे जा सकती है ?' किरानी दयाल का पूरा नाम दीनदयाल पासवान था। पंचायत भी डॉक्टर की बात पर सहमत थी कि जाति-बिरादरी को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। फिर तय हुआ कि दीनदयाल को पीड़िता की इज्जत वापसी के लिए दो लाख रुपया जमा कराने होंगे। दीनदयाल भी क्या करते, रहना तो आखिर उसी गांव में था। किसी तरह रुपये की व्यवस्था कर लड़की की आबरू की रकम अदायगी की और अपने लफूझंग बेटे को जेल जाने से बचा लिया।"

हमसब सचिन की कथा बड़े ध्यान से सुन रहे थे। प्रसंग अगर लड़का और लड़की का हो तो दिलचस्पी ऐसे भी बढ़ ही जाती है। सचिन भी इसी चुहुल में मस्त था मानो गांव के सारे संस्मरण उसकी आँखों के आगे नाच रहे हों। सचिन ने बात आगे जोड़ना शुरू किया।

"बाद में एक दिन मनोज हमसे मिला तो बोला, 'अरे भाई हम कुछ्छु नईखे कईले रहिं। बस चार-पांच ठो चुम्मा लेनी हऽ अऊर थोड़का सा धर-पकड़ कईले रहिं। लईकी जब आपन कपड़ो नइखे उतरलस तऽ रेप कईसे हो जाई हो मरदे। अऊर सरवा इहां झूठ-मूठ के हल्ला हो गइल कि मनोजवा डॉक्टर के साली के लील दिहलस। हम पापा से कहनि हऽ कि लईकी के जांच आरा के कउनो बड़ क्लिनिक में कराईं तऽ अपने दूध के दूध अउर पानी के पानी हो जाई। पापा उल्टा हमरे के लपड़िया दिहलन। कहत बाड़ें का जरूरत रहे लईकी जोरे खेत में जाय के। सौउसे गाँव तहरा के

जुहिया संगे लबड़लस हालत में देखले बा। हम कहनि कि पापा सब झूठ बोल तारन। हम दुनु जना कउनो लबड़ लीचनी ना करत रहिं। लईकी खुदे आके हमरा के पीछे से अकवारी में धर लिहलस। बस एकरे में गुदगुदी भईल अउर थोड़का सा मियाज फनफना गईल। पापा इतना सुनिए के हमरा के मार जुत्ता लतवन्स दिहलन और कहत बाड़ें कि ढ़ेर तोर मियाज फनफनाता। बहुत गुदगुदी झर रहलऽ बा। अब बहुत हो गइल। अब अउर न बरदास्त करब। कारीसाथ में तहार बियाह तय कर देले बानी। लईकी मैट्रिक पास बिया। डेढ़ लाख में तय तमन्ना हो गइल बाटे। लईकी पछ के पता बा कि लईका आईटीआई पास बा। दु लाख में डेढ़ लाख तो असूल हो गइल। बाकी के पचास हजार कहीं से भी हमरा के चुकता कर अउर फिर ओकरा बाद आपन मेहरारू संगे जेतना फनफनाए के बा फनफनो। पापा फनफना के चल गइलन अउर सार हमार झांट जर के उज्जर हो गईल। बताव मरदे, अईसन बाप होला का हो। एगो के जऊरे कुछु कइनी न अउर दु लाख चू गईल। दुसर के साथ कुछ करे से पहिले डेढ़ लाख देवे के पड़ रहल बा। ऊपर से पचास हजार हमर बाप के अउर चाहिं। सार के एतना पैसा में तो बम्बई में कउनो हिरोनी के साथ जबर मौज कर लेतीं अउर केकरो के थाहो-पतो न लागित।'

'पर हमरा के विस्वास नइखे होत कि तू लईकी के साथ कुछु नइखे कईले।'

'अरे मरदे हम तहरा से काहे के झूठ बोलब हो। ऊपर से जुहिया तऽ तहार नाम लेत रहे कि छोड़ो नहीं तो मैं सचिन को सब बता दूंगी।'

'हमार नाम....?'

'अउर नै त का।'

'काहे..?'

'अब हम काहे के जानि हो मरदे कि लईकी तहार नाम काहे के लेत रहे। अब तू बुझऽ अउर तहार जूही बुझी। हम जात बानी ताड़ी पिये। सरवा कपार खराब हो रहल बा हमार।' मनोज गया ताड़ी पीने और मेरा दिमाग चकरा गया कि जूही मेरा नाम क्यों ले रही थी।"

"क्यों ले रही थी..?" प्रवीण ने बीच में टोका।

"मनोज तो पक्का सेक्सुअली फ्रस्टेड हो गया होगा।" मैंने मसखरी की।

"पता नहीं पर एक बात जो मनोज बोला वो सच निकली।" सचिन ने मेरी मसखरी को नज़रअंदाज़ करते हुए कहा।

"कौन सी बात...?"

"अरे वही खेत वाली बात।"

"मतलब..?"

"उस घटना के कुछ रोज बाद एक रात डॉक्टर साहब और जूही में खूब झगड़ा हुआ। दोनों एक-दूसरे को खूब खरी-खोटी सुना रहे थे। बात धमकी और देख लेने तक आ गयी। जूही बोल रही थी, 'देखिए जीजा जी, शराफत से मुझे मेरे पैसे दे दीजिए वरना अच्छा नहीं होगा।'

'कौन सा तुम्हारा पैसा, डॉक्टर ऐंठते हुए बोला। पंचायत ने दीनदयाल से जो भी जुर्माना वसूला है वो मेरी वजह से। मेरी

इमेज अच्छी है कि पैसा मिल गया वरना एक ढ़ेला भी नहीं मिलता।'

'पर गलत काम तो मेरे साथ हुआ न। और पैसा भी तो उसी वजह से मिला।'

'साली जी ज़्यादा बनो मत। सच क्या है हमदोनों को पता है। तुम्हारे साथ अगर सच में कुछ ग़लत हुआ होता तो और बात थी पर जब कुछ हुआ ही नहीं तब पैसा किस बात का। फिर भी तुम साली हो इसलिए चलो तुमको पंद्रह हजार तक दे सकते हैं।'

'मुझे कोई खैरात नहीं चाहिए। जो मेरा हक़ है वो मैं ले कर रहूंगी। एक लाख से एक रुपया कम न लुंगी। और ज्यादा स्मार्ट बनने की कोशिश की न तो पूरे गांव के सामने आपकी पोल-पट्टी खोल खोल दूंगी। मेरे साथ तो कुछ ग़लत नहीं हुआ पर सच जानने के बाद ये लोग आपका रेप ज़रूर कर देंगे।'

जूही की बात सुनकर डॉक्टर साहब सकपका गए। पैसा तो जाएगा ही गांव में बनी बनाई इज़्ज़त भी जाएगी। कोई चारा न देख डॉक्टर साहब एक लाख देने के लिए तैयार हो गए।

अगले ही शाम को जूही की दिल्ली के लिए ट्रेन थी। जाने से पहले वो मेरे घर में सभी से मिलने आयी और मौका भांपते ही हमसे बोली, 'सचिन, मुझे लगा खेत में तुम हो इसीलिए मैं तुम्हारे पीछे-पीछे खेत में आ गयी। पर वहां मनोज था जिसने मुझे अकेला पा कर पकड़ लिया और ज़बरदस्ती करने लगा। I swear to god हमदोनों के बीच ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। I'm still so pure and virgin. And one more thing which i want to confess, sachin I really like you. एक ही सांस में जूही

इतना कुछ बोल दी। हम अवाक रह गए। मम्मी और दादी आंगन से हमदोनों को एक टक घूर रही थी तो हम भी लाज के मारे कुछ बोल नहीं पाए। पर अफ़सोस बहुत हुआ कि जूही यह बात हमको पहले क्यों नहीं बताई। अरहर का खेत तो अभी भी जस का तस था।

'तुम भी तो बहुत जल्द दिल्ली आने वाले हो न। I will wait for you...Bye.' जूही मुस्कुराते हुए बोली और पलट कर अपने जीजा के एम्बेसडर कार में सवार हो गयी। हम कुछ बोले नहीं बस उसके एम्बेसडर को तब तक देखते रहे जब तक कि वो गांव के छोर से ओझल न हो गया।"

"इसका मतलब जूही तुमको चाहती थी !" मैंने निष्कर्ष निकाला।

"पता नहीं। हो भी सकता है और नहीं भी।" सचिन ने अपने कंधे उचका दिए।

"पर चलो यह तो अच्छा हुआ कि तुम्हारा खेत जुतने से बच गया।" सुधीर ने चुहल की।

"मतलब...?" सचिन चौंका।

"अबे तुम्हारा खेत मनोज जोतना चाहता था न पर वो अपना हल चला नहीं पाया। अब जब तुम दिल्ली अपने खेत के पास आ ही गए हो तो चला दो अपना हल, ट्रैक्टर, जेसीबी जो भी चलाना है।" सुधीर की इस द्विअर्थी संवाद पर सचिन हत्थे से उखड़ गया, "देखो सुधीर, हमसे ज़्यादा अंड-शंड न बको। और जूही जैसी भी है पर ख़बरदार जो उसके बारे में कुछ भी ऐसा-

वैसा बोले तो।" सचिन के समर्थन में मैंने, प्रिंस और प्रवीण ने भी सुधीर पर अपनी त्योरियां चढ़ा दीं।

माहौल को हल्का करने के प्रयास में प्रिंस ने कनॉट प्लेस घूमने का विचार रखा जिसे हम सब ने मान लिया। हम पांचों की एक खास बात यही थी कि हम आपस में भले एक-दूसरे से कितने ही तपे हुए क्यों न हो पर बात जब आम सहमति की आती है तो हममें से शायद ही कभी कोई उसका विरोध करता है। पीठ पर होलडोल लादे और हाथों में टिन का बक्सा टांगे हम नई दिल्ली की तारो-ताज़ा और आँख चौंधियाती फैशन से लबालब कनॉट प्लेस में खानाबदोशों से भटक रहे थे। दिल्ली खानाबदोशों का शहर है। कितने यायावर आए और कितने चले गए। हम बिहारी भी तो यायावर ही हैं जो मुस्कुराते, बत्तीसी दिखाते, रेंगते-भागते अपनी अधखुली आँखों से देखे गए सपनों की खोज में चल-चल रे नौजवान की तर्ज़ पर दिल्ली धमक पड़ते हैं। हम बिहार की वो पीढ़ी हैं जिसने ज़िन्दगी के बचपन का अहम हिस्सा उस मासूमियत के साथ जिया ही नहीं था जिसकी हमें दरकार थी। अहसास के तर्ज़ पर सिर्फ कड़वी और भयानक यादें क़ैद थीं जो आज भी अक्सर हमें कुरेदती हैं। दिल्ली में वो छूटा हिस्सा जीने का वक़्त आ गया था। वो हिस्सा जो असीम सपनों से भरा है और जो बेख़ौफ़ और खिंदलड़े जज़्बातों से सराबोर है। इस भागमभाग में विश्वास की लकीर तो है साथ ही अनिश्चितताओं का भंवर भी है। दिल्ली में पहले-पहल अजनबीयत का एहसास तो होता है पर एक अबाध स्वतंत्रता का भान भी होता है। साथ ही उस गहन ज़िम्मेदारी का बोध भी पहली बार इसी शहर में होता है जिसकी

टोह में हम सभी अपने गांव और ठौर से निकले होते हैं। आते वक़्त सियाराम सिंह ने अपने बेटे पिंटू पर खुन्नस निकालने की तर्ज़ पर मुझपर तंज कसा था, 'जो भी पढ़ा-बेपढ़ा निकलता है जा कर दिल्ली में ही धंस जाता है।' गनेसी ने इस तंज का सटीक जवाब दिया। वो भी ठेठ हिंदी में, 'दिल्ली सपनों की खादान है। चमक हर तरफ बिखरी पड़ी है। हुनर है तो उठा लो हीरा वरना कोयले से काम चलाओ।' फिर मेरी तरफ देख मुस्कुराते हुए फुसफुसाया, "शायरी है। पिछला सट्टा में सीखे।"

सूरज ने अपनी बाहें पूरी तरह खोल दी थीं पर बादलों संग उसकी लुकाछिपी बदस्तूर चालू थी। दिल्ली की गुनगुनाती ठंढ में कनॉट प्लेस विचरते हुए कब दो घण्टे बीत गए पता ही नहीं चला। इस दौरान सुधीर की एक और अजीबोगरीब हरकत ने मेरा ध्यान खींचा। वो कनॉट प्लेस के हर पाए के पास जाता, पायों को ऊपर से नीचे देखता फिर बारीकी से जांचने के अंदाज में कभी पायों में नाखून गड़ाता तो कभी उनके ऊपर अंगुलियों से ठोक कर ठक-ठक की आ रही आवाज़ को कान लगा कर सुनता फिर उन्हें बाहों में भरता और कुछ सोचने के बाद आगे निकल जाता। उसकी यह उद्ध्यमशीलता अमूमन हर पाए के साथ बदस्तूर चालू थी। आस-पास से गुजरते लोगों ने भी उसकी इस कारिस्तानी पर नजर दौड़ाई। कुछ ने टिक कर थोड़ी देर देखा तो कुछ उसे ऐसा करते देख कर मुस्कुराते हुए आगे निकल गए। जब मुझसे रहा नहीं गया तो मैंने आखिर पूछ ही लिया, "यह क्या खुराफ़ात कर रहे हो ? सब हंस रहे हैं तुमको देख कर।"

"दिल्ली का कॉन्ट्रेक्टर सब बहुत बड़ा फकैत है मनु। कनॉट प्लेस का पिलर बहुत कमज़ोर बनाया है। सरिया डाला ही नहीं है। बस सीमेंट और बालू का गारा बना कर ईंटा पर ढ़ाल दिया है। एक बार भूकम्प आया नहीं कि सब भर-भरा के गिर जाएगा।" सुधीर ने किसी अनुभवी ठेकेदार की भांति पूरी गंभीरता से कहा। ठेकेदारी सुधीर के ख़ून में थी तो उसके निष्कर्ष में वजन होना लाज़िमी था। मैंने भी अपनी आँखें उन गोलाकार पायों पर गड़ा दी और सुधीर के सार पर विचार करने लगा। उसने कहना चालू रखा, "और चालाकी देखो यहां के ठेकेदार सब का। पैसा बचाने के चक्कर में सब पाया को एक ही रंग में चुना से पोत दिया। दिल्ली का सबसे चौंचक जगह है। कुछ तो रंगीनियत रखता। हमारे पापा को इसका ठेका मिला होता तो सब पाया को इंद्रधनुषी रंग में पेंट करवाते और पिलर में चार इंची का सरिया डलवाते सो अलग। मजबूती ऐसा उभर के आता कि भूकम्प क्या बुलडोजर का इंजन भी घिसिया जाता इसको हिलाने में। बहुत घालमेल है भई देश की राजधानी में। सब ठग-ठठेरा यहीं बैठा हुआ है।" सुधीर ने देश मे पनपे भ्रष्टाचार पर अपनी गहन टिप्पणी की। हम इस विषय पर कोई और बहस करते इसी बीच सचिन के मोबाइल की घंटी बजी। दूसरी तरफ धर्मेंद्र था जो पुराना किला वाले अपने अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य से फ़ारिग हो कर हमें मुखर्जी नगर आने का दिशा-निर्देश दे रहा था।

कनॉट प्लेस घूमने के दौरान यह भी एहसास हुआ कि कैसे दिल्ली परंपरागत और नवीन आबोहवा के बीच दोराहे पर खड़ी है। कनॉट प्लेस का इनर सर्कल जहां नई सदी के चलन और

सभ्यता के नए उपसर्ग में तर-बतर है तो वहीं इनर सर्कल के बाहर फुटपाथ पर खास्ताहाल खोमचे, ठेलेवाले और पनवाड़ी की टोली दिल्ली को पश्चिमी सभ्यता के तलैया में गोता लगाने से रोकने के लिए मुहाने पर खड़े हैं। दूर-दराज़ से आए ये प्रवासी अपने पलायन की पीड़ा को पीछे छोड़ पूरे गंवई रंग-ओ-आब में महानगरीय चकाचौंध को चुनौती देने के लिए हमेशा ही अड़े रहते हैं। गांव उजड़े तो शहर आबाद हो गए। गांव ने खुद को मार कर कई शहर ज़िंदा कर दिए। दिल्ली भी तो सिर्फ नाम का ही महानगर है। अंदर आत्मा तो गांव की ही बसी है। दिल्ली का कनॉट प्लेस भी इसी आत्मसंघर्ष से जूझ रहा है। आत्मसंघर्ष का यह दृश्य मुझे सत्तर के दशक के किसी हिंदी फिल्म के मेलोड्रामा जैसा लग रहा था। अपने ही अंतर्विरोधों से घिरा हुआ है नई दिल्ली का कनॉट प्लेस। एक तरफ मिनी स्कर्ट और लो वेस्ट जीन्स पहनी लड़कियां अपने बॉयफ्रेंड के हाथों में हाथ डाल एनरिक इग्लेसियस के अंग्रेजी गाने एस्केप को गुनगुना कर अभिभूत हो रही थीं तो वहीं कुर्ता-पायजामा पहने मुंह में तिरंगा गुटखा डाले पूर्वांचली लड़के मनोज तिवारी के बगल वाली जान मारे ले को पूरी तन्मयता से भज रहे थे। हम अपनी आँखों के इंची-टेपों से बगल से गुजर रही हर लड़की के कोण, त्रिज्या और भूगोल को पूरी आत्मीयता से नाप रहे थे और फैशन के इस नए अर्थशास्त्र को समझने की कोशिश कर रहे थे। लड़कियों की नाभि में पियरसिंग मन में सनसनी पैदा कर रहा था।